fo|k Hkkjrh inhfidk

p= l Hkknin] foØeh lor 2078] ;xkCn 5123

vily l flrEcj 2021 l;Drkd o"k 41 vd 3 o 4 eY;% ₹35@&

राष्ट्रीय समर स्मारक

भारतकेन्द्रित शिक्षा नीति : क्रियान्वयन | भूमि तत्त्व | डॉ. भीमराव अम्बेडकर : एक महामानव | शासक नहीं साधक

School Complexes–Social Orientation | History of Indian Education I Experience is the best Teacher

आँगनबाड़ी प्रशिक्षण कार्यक्रम
दिनांक 06, 07 व 08 अगस्त 2021
स्थान – आई.ई.टी., लखनऊ
प्रेरणा

विद्या भारती पू.उ.प्र. क्षेत्र की शिशु वाटिका व आंगनवाड़ी प्रशिक्षण निर्देशिका का विमोचन राज्यपाल महोदया उ.प्र. एवं अधिकारियों द्वारा

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान
अखिल भारतीय (शिक्षक-प्रशिक्षक कार्यशाला)

विद्या भारती अ.भा.शिक्षा संस्थान द्वारा आयोजित अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक कार्यशाला, नई दिल्ली में मंचासीन अधिकारी वृन्द

विद्या भारती मध्यक्षेत्र, भोपाल
शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान
“अक्षरा”
भवन लोकार्पण समारोह
आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी संवत २०७८
दिनांक :14 जुलाई 2021, बुधवार
मुख्य अतिथि
मा. दत्तात्रेय होसबाले
(सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ)

विद्या भारती मध्य क्षेत्र के शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान के भवन ‘अक्षरा’ के लोकार्पण समारोह में मंचासीन वरिष्ठ अधिकारी वृन्द

विद्या भारती प्रदीपिका

¼fo|k Hkkjrh vf[ky Hkkjrh; f'k{kk lLFkku dh =Sekfld if=dk½

अप्रैल से जून 2021 व जुलाई से सितम्बर 2021 संयुक्तांक , चैत्र से भाद्रपद विक्रम संवत् -2078, युगाब्द - 5123 मूल्य 35/-रु.

मार्गदर्शक
डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा
श्री डी. रामकृष्ण राव
श्री दिलीप बेतकेकर
डॉ. रमा मिश्रा
डॉ. रवीन्द्र कान्हेरे

सम्पादक
डॉ. ललित बिहारी गोस्वामी

सम्पादक मण्डल
श्री राजेन्द्र सिंह बघेल
डॉ. अरुण मिश्र
श्री वासुदेव प्रजापति
डॉ. पवन शर्मा

संपादन सहायक
कौशलेश कुमार उपाध्याय

आवरण सज्जा
मारिय्याप्पा मार्टिन

प्रकाशन कार्यालय
प्रज्ञा सदन, गो.ला.त्रे. सरस्वती बाल
मंदिर परिसर, महात्मा गांधी मार्ग,
नेहरू नगर, नई दिल्ली -110065
फोन नं. 011-29840126,29840013
ईमेल-vbpradeepika@gmail.com

सदस्यता शुल्क
वार्षिक शुल्क- 120/-रु.
दस वर्षीय शुल्क- 800/-रु.

शुल्क राशि 'विद्या भारती प्रदीपिका' के बचत खाता क्र. 1130307980 सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, IFSC-CBIN0283940 ब्रांच नेहरू नगर, नई दिल्ली में जमा कर, पत्र द्वारा कार्यालय को सूचित करें।

मुद्रण- जेनिसिस प्रिंटर,
सी 74, ओखला डस्ट्रीयल एरिया,
फेस-1, नई दिल्ली-110020

vuØef.kdk

सम्पादकीय	डॉ० ललित बिहारी गोस्वामी	4
भारतकेन्द्रित शिक्षा नीति : क्रियान्वयन	डॉ० शिव कुमार शर्मा	5
भारतीय धर्मशास्त्र : एक अनुशीलन	डॉ० धीरेन्द्र झा	10
भूमि (पृथ्वी) तत्त्व : माता का दुलार	डॉ० उमेश चन्द वर्मा	13
सिंधी लोकमान्यताओं में रामायण	प्रो० रविप्रकाश टेकचन्दानी	16
मातृभाषा, मात्र भाषा नहीं होती	प्रो० चन्दन कुमार	19
आंध्र प्रदेश : एक विहंगावलोकन	डॉ० ओरुगंटि सीतारामसूर्ति	21
डॉ० भीमराव अम्बेडकर : एक महामानव	प्रो० भरतराम कुम्हार	23
गूजे भारत माँ की जय	श्री गोपाल महेश्वरी	27
नए युग-गान गाएँ	श्री गोपाल महेश्वरी	28
शासक नहीं साधक	श्री केशव कुमार शर्मा	29
आर्यभट्ट : प्राचीन भारत के खगोल वैज्ञानिक	डॉ० ओउमप्रकाश शर्मा	32
बारह-पाल की घुमंतू जातियों का महत्त्व	श्री शैलेन्द्र विक्रम	36
धूल तेरे चरणाँ दी (पंजाबी कहानी)	श्री लोचन बक्शी	39
राजा शिवछत्रपति : पुस्तक समीक्षा	श्री लक्ष्मीनारायण भाला	43
School Complexes – Social Orientation	D. Ramakrishna Rao	47
History Of Indian Education	Shri Nar Singh Sehrawat	49
Enlightenment of family is a pillar of child education	Shri Desh Raj Sharma	54
Experience is the best teacher	Mrs. Rashmi S Chari	57
Urgency of Reforms in United Nations Organization	Shri Rajendra Kumar Shastri	60
New Age Learning	Dr Madhu ved	62

प्रदीपिका में प्रकाशित विचार रचनाकारों के हैं, पत्रिका की सहमति आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

भारत अपनी स्वतंत्रता का 75 वाँ वर्ष 'अमृत महोत्सव' के रूप में मना रहा है। यह उल्लास और उत्साह का अवसर है। चहुँ ओर आनंद और आनंद। अभिनंदन और बधाई के स्वर वातावरण में गूँज रहे हैं। सब तरफ राष्ट्रीय ध्वज 'तिरंगा' फहरता, लहरता आँखों को बड़ा सुख देता है। जीवन की कृतार्थता का साक्षात् अनुभव होता है। सब दुःखों से ऊपर बहुत कोमल अनुभूतियाँ, स्पन्दन मन को गुदगुदाते हैं।

ऐसी उपलब्धि के पीछे निश्चय ही चिंतन, विचार, बौद्धिक आदि सब प्रकार के परिश्रम, तदनुरूप साधना, योजना और उसके सफल क्रियान्वयन का लंबा इतिहास होता है। यह सफलता, फिर और जो कुछ रह गया है, उसे प्राप्त कर लेने तथा अपने लिए नए-नए क्षितिज तलाश लेने की प्रेरणा बनती है; अपनी कमजोरियों, अपनी विफलताओं पर विजय प्राप्त कर सकने का विवेक एवं शक्ति भी देती है।

भारत के आध्यात्मिक ज्ञान और भौतिक समृद्धि ने विदेशी ज्ञान-पिपासुओं और लुटेरों दोनों को अपनी ओर प्रबल रूप से आकर्षित किया। पहले पर्वत, खाई, समुद्र लाँघते विनम्र जिज्ञासा के भाव से उपस्थित हुए तो दूसरे तलवार हाथ में ले घोड़े दौड़ाते धूल उड़ाते उद्धत भाव से चढ़ते चले आए। शास्त्र और शस्त्र के उपासक हमारे मनीषी पूर्वजों ने पहले को अमृतत्व प्राप्त कर लेने वाली विद्या दी तो अपनी शक्ति के बल पर दूसरे को पराभव का स्वाद भी चखाया। वर्षानुवर्ष यह चलता रहा। फिर अनेक कारणों से आरोह के साथ अवरोह की स्थितियाँ भी बनीं, पर संघर्ष, युद्ध निरंतर चलता रहा। विदेशी लुटेरों के सामने जहाँ दो-दो, तीन-तीन वर्षों में बड़ी संस्कृति की पृष्ठभूमि वाले बड़े-बड़े देश घुटने टेकते चले गए, भारत अपनी संस्कृति के बल पर अपने पैरों पर खड़ा रहा है।

यह सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले और बाद में भी भारत को हीन सिद्ध करने के लिए अनेक प्रवाद, अनेक प्रकार के 'नैरेटिव' तथाकथित वामी बुद्धिजीवियों और अपने-अपने धर्म (पंथ) को ही वरीय समझने और सिद्ध करने वाले परधर्मी विचारकों ने खड़े किए। ऐसे में सत्य क्षत-विक्षत हुआ। इतिहास की, ऐतिहासिक घटनाओं की मनमानी व्याख्या हुई। लुटेरों को नायक, महानायक सिद्ध करने की मुहिम छिड़ी। सत्तालोलुप राजनीति ने इसमें अपना पूरा योग दिया। सभा और संसद् में संवाद नहीं होते, नारेबाजी, गाली-गलौज और बहिर्गमन होता है। असंसदीय और अमर्यादित आचरण दिन-प्रतिदन का किस्सा बन जाते हैं, अस्तित्व की लड़ाई छिड़ जाती है मानों।

यह तथ्य है तो इससे बड़ा सत्य यह है कि विपरीत परिस्थितियों में से, भले ही बड़ा मूल्य देकर, भारत विजिगीषुवृत्ति से विजयी भी हुआ है। इसके लिए भारत माता के अगणित सपूतों ने आत्मबलिदान किया है। गत अनेक वर्षों में दृष्टिसम्पन्न नेतृत्व और समाज की इच्छाशक्ति ने स्वाभिमानपूर्वक विकास और विश्वास का जो वातावरण तैयार किया है, वह अपूर्व है। इस देश की अस्मिता एवं चिति के जागरण ने पूर्व में षड्यंत्रपूर्वक बनाए गए 'नैरेटिव' को सिर के बल खड़ा किया है। समाज का आत्मविश्वास बढ़ा है, इतिहास बोध दुरुस्त हुआ है और भविष्य-दर्शन में स्पष्टता बनी है। अपने लोकतांत्रिक, मानवीय मूल्यों में अटूट आस्था और अथक परिश्रम आगे का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। आस-पास पड़ोसी देशों की स्थिति देखें तो कहीं भी लोकतत्र और मानवीय मूल्यों का दर्शन दुर्लभ है। इसलिए इस 'अमृत महोत्सव' को मनाने के हम अधिकारी हैं। हाँ, सजगता, सतर्कता, मूल्यों की इस डोर को पकड़कर आगे बढ़ने का हमारा स्वभाव अक्षुण्ण रहे।

आजादी के 75 वें वर्ष में इस 'अमृत महोत्सव' को मनाते हुए सन् 1947 के विभाजन के समय और उससे पूर्व के कुछ वर्षों को नहीं भूलना चाहिए। 18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद् ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया और सर सिरिल रेडक्लिफ ने कागज़ पर रेखा खींचकर एक देश को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। इसे 'माउण्टबेटन योजना' कहा गया। विस्थापन और अमानुषिक अत्याचारों के कारण लाखों लोगों की नृशंस हत्या कर दी गई। करोड़ों लोग शरणार्थी बन गए। ये गाथाएँ दिल दहला देने वालीं थीं, इनके साक्षी अभी हैं। यह इस देश के अवचेतन में गहरे में पैठा है तो चेतन मन को व्यथित भी करता है। 14 अगस्त को हर साल अब **''विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस''** के रूप में मनाना बिल्कुल सही है। यह अभी इतिहास नहीं बना और यह सत्य हमारी चेतना को झकझोरता रहेगा तो बहुत सी गलतियों से हम बच जाएँगें, हमारा **अमृत महोत्सव** हमें अमृतत्व की दिशा में अनेक कदम और आगे बढ़ा देगा।

X X X

जापान के ओलम्पिक 2020 खेलों में हमारे खिलाड़ियों ने अपने मजबूत इरादे प्रदर्शित करते हुए तिरंगे की शान बढ़ाई। इन खिलाड़ियों में नीरज चोपड़ा ने भाला फेंक में स्वर्ण, मीराबाई चानू ने वेट लिफ्टिंग में रजत पदक, कुश्ती में रवि कुमार दहिया ने रजत पदक तथा तलवारबाजी में सी.ए .भवानी, मुक्केबाज लवलीना बोरगोहेन, बैडमिंटन में पी.वी.सिंधु ने कांस्य पदक प्राप्त किया। भारत का राष्ट्रीय खेल हाकी एकबार पुनः 41 सालों के बाद चर्चा का केन्द्र बना जब पुरुष दल ने आपसी सुन्दर तालमेल से कठिन संघर्ष कर कांस्य पदक प्राप्त कर देश का नाम विश्वपटल पर रौशन किया। सभी खिलाड़ियों को कोटि-कोटि बधाई !

X X X

कोरोना की दूसरी लहर और अधिक विकराल सिद्ध हुई। कोरोना द्रुत गति से बढ़ा, मुहावरे में कहे तो दिन दूनी रात चौगुनी गति से। हमारी लापरवाही और प्रमाद इसके मूल कारणों में प्रमुख रहे। हमारे अनेक कार्यकर्ता हमसे विछुड़ गए। उनकी सूरत आज भी सभी के आँखों के सामने बनी रहती है। इनकी स्मृत्ति हमेशा बनी रहेगी। अपने हजारों कोरोना हुतात्माओं को अश्रुपूर्ण विनम्र श्रद्धांजलि !

डॉ. ललित बिहारी गोस्वामी

HkkjrdsfUnzr f'k{kk uhfr % fØ;kUo;u

दिशाबोध

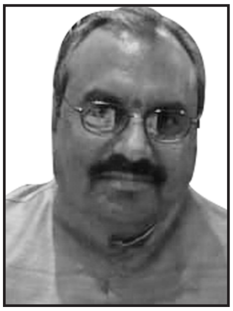

डॉ० शिव कुमार शर्मा
भारतीय शिक्षा दर्शन के प्रख्यात
चिंतक व विचारक
अनेक शैक्षिक मंचों पर व्याख्यान
राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन
हेतु समाज में शैक्षिक प्रबोधन

संपर्क
मो. 9415024034

बचपन में एक पत्रिका में पढ़ा, लिखा था 'किसी भी देश के भविष्य का आकलन करना हो तो उस देश के किशोर, नवयुवक-नवयुवतियों द्वारा गुनगुनाए जाने वाले गीतों के माध्यम से किया जा सकता है। उन गीतों के शब्दों, पंक्तियों, लय, भावों में देश का भविष्य प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार के गीतों के बारे में विचार किया जाता है तो ध्यान में आता है कि अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग प्रकार के युवाओं की सोच का निर्माण होता है। सहज रूप में उनके द्वारा गुनगुनाए जाने वाले गीत चाहे वे सिनेमा के गीत हों या फिर मातृभाषा के, इन गीतों के माध्यम से उनके रुचि और स्वभाव का पता लगता है साथ ही यह भी पता चलता है कि वे भविष्य में क्या बनना चाहते हैं। जिस पृष्ठभूमि में युवाओं का निर्माण होता है, उसी प्रकार की पृष्ठभूमि के आधार पर उनकी मनःस्थिति निर्मित होती है। वही मनःस्थिति कालान्तर में देश के भविष्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

विद्या भारती के लक्ष्य में एक विशिष्ट प्रकार की युवा पीढ़ी का निर्माण करने वाली वह पद्धति, जिसमें व्यक्ति से लेकर समाज और राष्ट्र तथा फिर सम्पूर्ण विश्व के कल्याण हेतु शिक्षा की परिकल्पना समाहित है। जैसी शिक्षा होगी, वैसी ही संतति, वैसी ही युवापीढ़ी का निर्माण होगा और वही पीढ़ी आगे चलकर उस देश के भविष्य का निर्माण कर सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में जब हम पूरी शिक्षानीति का आकलन करते हैं, तो ध्यान में आता है कि इस सम्पूर्ण शिक्षा नीति में 'भारतकेन्द्रित शिक्षा' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है । इसकी संकल्पना क्या है? भारतकेन्द्रित शिक्षा शब्द सुनना तो अच्छा लगता है परन्तु यदि इसे सही संदर्भों में व्याख्यायित नहीं करेंगे व सही संदर्भों में नहीं नहीं समझेंगे तो क्रियान्वयन करने के लिए स्पष्ट दिशा का अभाव रहेगा। भारतकेन्द्रित शिक्षा क्या है? इस पर विचार करना अनिवार्य है। भारतीय मानस की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में तीन शब्दों का समुच्चय है सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् । यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। पहला शब्द है सत्य, सत्य का अन्वेषण जब प्रारम्भ होता है, तो शिक्षा का स्वरूप उस देश की संस्कृति से जुड़ जाती है।

हम भारतकेन्द्रित शिक्षा पर विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि इस शिक्षा नीति के अन्दर भी भारत के हजारों वर्ष पूर्व की जो गौरवमयी भारतीय विरासत है, उसकी की ओर ले जाने का प्रयास व विचार इस शिक्षा नीति में निहित है। हमें एक बात ध्यान में रखना चाहिए कि नीति सदैव संकेत रूप में होती है। नीति का क्रियान्वयन करते समय क्रियान्वयन करने वालों को इस नीति को परिभाषित करना पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच संवादों में बहुत सी बातें सांकेतिक हैं परन्तु कालान्तर में सैकड़ों विद्वानों ने अपनी-अपनी पद्धति से विश्लेषण किया है। उसी प्रकार शिशु, बाल, किशोर तथा तरुण को अपने-अपने विश्लेषण से जिस रूप में स्वीकार करवाना चाहते हैं, उस दृष्टिकोण से वैसा भाव देने से स्वीकार करेगा। जब हम इस शिक्षा नीति में भारतीय चिंतन को साकार करने का प्रयत्न करते हैं तो ध्यान में आता है कि आज किसी शिशु कक्षा के बच्चे को, पहली कक्षा के बच्चे को रिप-रिप पोएम/रैम को यदि आप उसे रटवाते हैं तो वह भारतीय दृष्टिकोण से उपुक्त है क्या?, नहीं है। यह जिस काल, परिस्थिति के अनुसार बनाई गई है, वह उस काल परिस्थिति में ही समीचीन होगी। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से वह साहित्य ठीक नहीं है। अपनी मातृभाषा में जो साहित्य निर्माण होता है, वह देशकाल की परिस्थितियों व भावनाओं से संवलित होता है। शिक्षा के विषय में अँग्रेजी में एक उक्ति का प्रयोग किया गया वह है Education must be comitted to progress & Rutted to Culture. ये प्रगति की ओर ले जाने वाली, प्रगतिशीलता

की ओर लेकर जाने वाली विकासोन्मुख शिक्षा होनी चाहिए। परन्तु यह जो अंडर लाईन करने वाली उक्ति है Rutted to Culture यह उस देश की मूल संस्कृति से, विरासत से जोड़ने वाली उसके तरफ ले जाने वाली, आपसी सम्बन्धों को बनाने वाली व उस सम्बन्ध के आधार पर मनुष्य की मनःस्थिति का निर्माण करने वाली होती है। यह तभी सम्भव है जब हम मातृभाषा के माध्यम से ही उस देश की संवेदनाओं का प्रकटीकरण कर उसके साथ तारतम्य स्थापित करें।

एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु इसके अंदर लाने का प्रयास किया गया है। सामान्य रूप से केवल इन्फारमेशन जिसके आधार पर परीक्षाएँ पास की जाती हैं, अंक या मार्क्स के आधार पर केवल कुछ डिग्रियाँ हासिल कर लेना इतना पर्याप्त नहीं है। भारतीय दृष्टिकोण शिक्षा की इतनी ही बात नहीं करता अपितु समग्र चिंतन की बात करता है। समग्र चिंतन केवल 'इन्फारमेशन तकनीक' से नहीं आता, उससे भी आगे जाकर केवल ''नॉलेज' से भी नहीं होता। हाँ उससे भी आगे जाकर उसमें जो 'विज़डम' है जिसे भारतीय चिंतन में विवेक कहते हैं, उस विवेकशीलता, निर्णय लेने की क्षमता, नेतृत्व कौशल के विकास से आता है। वह ज्ञानात्मक पक्ष जिसके आधार पर पुस्तकों का अध्ययन समग्रता से किया जाता है, जीवन में उस शिक्षा का क्रियान्वयन होता है तो उसका मूल आधार बनता है। इसके तीन पक्ष हैं। जिज्ञासा करना, अनुसरण और उसको स्वीकार करना। इससे सम्बन्धित एक और बिन्दु है जो भारतकेन्द्रित शिक्षा को बढ़ावा देने की ओर इंगित करता है वह है व्यावसायिक शिक्षा यानि Vocational Education जो कक्षा छठी से लागू किया जाने वाला है। भारतीय चिंतन में इस शिक्षा के बारे में कहा है। विष्णुपुराण में एक श्लोक आता है (1/19/41) जिसकी हम अक्सर चर्चा करते हैं वह है -

'तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।'
आयासाया परं कर्म मृदयाशिल्पनैवगुणम् ।।

यह जो शिल्पनैवगुणम् वाला पक्ष है वही 'स्किल डवलपमेंट' है। जिसको कौशल विकास की संज्ञा दी गई है। यानि बाकी के पक्ष है 'तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये' ये पराकाष्ठा है विद्यार्थी की। भारतकेन्द्रित शिक्षा के आधार पर विष्णुपुराण के इस श्लोक के भाव को शिक्षा में क्रियान्वित करना। 'स्किल डवलपमेंट' वाला जो पक्ष है यानि इस शिल्पनैवगुणम्, इसको इस नीति में संदर्भित किया गया है। कक्षा ६ ठी से उस प्रकार के कर्म करने के लिए, उस प्रकार की तज्ञता हासिल करने के लिए, वोकेशनल ट्रेनिंग पाठ्यक्रम को समाहित करना, जिससे विद्यार्थियों में तकनीकी कौशल का विकास हो। एक और विषय महत्त्व का है, वह श्रमनिष्ठा, जो इस शिक्षा नीति में है।

जिस प्रकार की शिक्षा नीति पिछले साठ-सत्तर वर्षों से चली आ रही है। वैसी शिक्षा नीति से तैयार कोई भी ग्रेजुएट या पोस्टग्रेजुएट किया हुआ व्यक्ति व्हाइट कॉलर ही होता है। अर्थात् काम का विभाजन श्रम के साथ न होकर, काम का विभाजन उस परिस्थिति और मनःस्थिति के आधार पर उसके काम के करने अनुसार होता है। हाथ से काम करने वाला छोटा है, बुद्धि से काम करने वाला बड़ा है। किसी एक केबिन में बैठ कर काम करने वाला बड़ा है, शेष छोटे हैं, इस प्रकार का विभाजन वास्तव में भारतीय चिंतन में नहीं है। भारतीय चिंतन में काम अच्छा या बुरा होता है। किसी दूसरे को कष्ट देना यह बुरा कार्य है। किसी दूसरे को सहयोग करना यह अच्छा कार्य है गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस में ''परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।'' कहा गया है इस आधार काम अच्छा या बुरा हो सकता है, छोटा या बड़ा कैसे हो सकता है। शिल्पनैवगुणम् के आधार पर ही 'स्किल डवलपमेंट' का संबंध आर्थिक पक्ष से है, इसमें श्रमनिष्ठा का भाव होना ही भारतीय पक्ष है।

हम सब लोगों की जिसकी आयु 55-60 के आस-पास है या उससे अधिक होगी, हम सबको ध्यान में आता है कि हमनें अपने जीवन में शालेय शिक्षा में क्रियात्मक कार्य के रूप में मिट्टी से कुछ बनाने का काम, पानी से सम्बन्धित कार्य किए हैं। कालान्तर में उसके प्रति नकारात्मकता का भाव विकसित हो गया, फिर से उसे सकारात्मकता आधारित करना, यह इस शिक्षा नीति के प्रयासों में सम्मिलित है।

हम लोग विचार कर रहे हैं कि भारतीयता वाला पक्ष कहाँ-कहाँ किस रूप में संदर्भित होता है। एक और बात ध्यान करने वाली है वह है इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जो एक संरचनात्मक बदलाव (structural change) किया गया है। शालेय शिक्षा में (5+3+3+4) विद्यार्थी का, आयु के अनुसार मनोविज्ञान परिवर्तित होता है। प्रारम्भ में तीन वर्ष से लेकर और आठ वर्ष तक की आयु जिसे फाउण्डेशन कहा गया है। जो पाँच वर्ष तक की शिक्षा है उसे विद्या भारती की भाषा में कहें तो शिशु वाटिका है। तीन वर्ष तक शिशु वाटिका उसके बाद कक्षा प्रथम और द्वितीय। शिक्षा नीति के अनुसार इसे कहेंगे 'अर्ली चाइल्डहुड कम्प्लसरी एजुकेशन' (ECCE)। इसमें तीनों जो पक्ष हैं उसमें कन्टेंट का पक्ष, टीचर्स ट्रेनिंग का पक्ष और सभी प्रकार के क्रियात्मक कार्य क्या-क्या करवाए जाएँ, इसमें गतिविधियाँ (activities) क्या-क्या करवाई जाएँ वे मनोविज्ञान के आधार पर केन्द्रित हैं। भारतीय पक्ष भी यही कहता है कि इस आयु में विद्यार्थी में सर्वाधिक संवेदना होती है, सेंसेटिविटी होती है, किसी भी बात को स्वीकार कर ग्रहण करने की संवेदनशीलता रहती है। इस आयु में उस प्रकार के मनोविज्ञान को सर्वाधिक ध्यान में रखकर उसका क्रियान्वयन करना। कक्षा तृतीय, चतुर्थ और पंचम यह जो प्लस तीन इसे कहा गया है। आगे प्लस तीन में छठी, सातवीं और आठवीं हैं। तत्पश्चात् प्लस फोर में नौवी, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं को लिया गया है। इन चारों प्रकार के विभाजन में, आयु वर्ग में जो मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है, उस आयु वर्ग को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को बनाना। उस मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए

पुस्तकों का निर्माण करना। पाठ को पढ़ाने के लिए पाठ्य-पद्धतियों का निर्माण करना चाहिए। उस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए उसके आधार पर उस प्रकार के शिक्षकों की तज्ञता को बढ़ाना। ये जो चारों बातें हैं, इन्हें समाहित करते हुए इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति को भारतकेन्द्रित शिक्षा के लिए एक आधारभूत व्यवस्था (Structural System) का परिवर्तन करने का एक प्रयास है।

इसी प्रकार जब कोई नीति निर्धारित होती है तो केवल सांकेतिक भाषा में उसमें उन विषयों का समावेश किया जाता है। हाँ, क्रियान्वयन करने वाले लोगों को उसका क्रमबद्ध पद्धति और समयबद्ध पद्धति, दोनों बातें ध्यान रखने की आवश्यकता है। क्रमबद्धता और समय सीमा में उसको क्रियान्वयन करने की सिद्धता चाहिए।

उक्त संदर्भ में हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विवेचन करेंगे तो ध्यान में आएगा कि पाँच घटक हैं, जिनके आधार पर इस शिक्षा नीति का क्रियान्वयन करने आवश्यकता है। पहला घटक है शिक्षक, दूसरा है विद्यार्थी, तीसरा है अभिभावक, चौथा है सामान्य समाज और पाँचवा घटक है प्रशासन। इन पाँचों की भूमिका राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन को आधार देने में महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला घटक : शिक्षक

शिक्षक कैसा होना चाहिए और शिक्षक का भारतीय दृष्टिकोण क्या है? जब कोई शिक्षक के रूप में किसी विद्यालय में अपनी भूमिका निर्वहन के लिए आगे आता है तो वह भाषा का शिक्षक है, गणित का शिक्षक है, विज्ञान का शिक्षक है यानि अलग-अलग विषयों के शिक्षक के नाते सम्मिलित होता है। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से केवल इतना ही पर्याप्त नहीं माना जाता। भारतीय दृष्टि में शिक्षक को केवल विषय प्रतिपादन करने या उस विषय की तज्ञता से, उसका कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता है। सहज रूप में कहा गया है How to teach परन्तु शिक्षक की भूमिका केवल विद्यार्थी को पढ़ाना ही नहीं बल्कि उसके अन्तर्मन को टटोलना, उसके साथ एकात्मता का भाव निर्माण करना है। जब यह प्रारम्भ होता है यानि उस एकात्मता के आधार पर शिक्षक का भाव, विचार, शिक्षक का मोटीवेशन उसका समर्पण और आगे चलकर शिक्षक का इन्शिपिरेशन यह उस विद्यार्थी के भविष्य के निर्माण में सहायता करता है। वह उसके अंतःकरण तक पहुँचता है और उस विद्यार्थी में उस प्रकार का परिवर्तन होता है। उससे भी आगे जाकर भारतीय चिंतन में कहा गया है कि केवल उसे विद्यार्थी का शिक्षक होना ही पर्याप्त नहीं है, समाज का भी शिक्षक होना, अतः शिक्षक समाज के लिए एक आदर्श चरित्र का है क्या? समाज के लिए एक आदर्श शिक्षक की भूमिका निर्वहन उसके द्वारा हो रहा है क्या ? सहजता से शिक्षक अपनी भूमिका के निरूपण करने में आगे बढ़ रहा है क्या? इस शिक्षा नीति में शिक्षक के संदर्भ में दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है Interdisplinery Approach & Multidisplinery Approach.

शिक्षक की भूमिका सांगोपांग आधार पर, समग्रता के आधार उस विद्यार्थी के विषय के साथ जुड़ते हुए, उस विद्यार्थी के माध्यम से समाज के साथ जुड़ना है। भारतीय चिंतन में जितने भी हमारे ऐसे शिक्षाविदों के नाम आते हैं उनमें चाणक्य से लेकर हरिभाऊ वझे, गिजुभाई बधेका तक उल्लेख कर सकते हैं। वे केवल एक विषय को पढ़ा देने वाले शिक्षक नहीं थे। केवल एक निश्चित विषय का मात्र प्रतिपादित कर देना या उस विषय की तज्ञता विद्यार्थी को हासिल करवा देना केवल इतना ही भूमिका नहीं थी। विद्यार्थी के साथ ही साथ समाज को भी सही दिशा में लेकर चलने की प्रक्रिया, समाज को सही दिशा में लेकर जाना, समाज के लिए सही विषयों का प्रतिपादन करना और समाज में आने वाली समस्याओं का समाधान देने के लिए उस प्रकार की परिस्थितियों में, उन चुनौतियों को स्वीकार करना व उन चुनौतियों का समाधान कर आगे बढ़ना, यह शिक्षक की भूमिका है।

दूसरा घटक : छात्र

भारतकेन्द्रित शिक्षा में छात्र की कल्पना क्या है? छात्र और शिक्षक के बीच परस्पर संबंध क्या है? कबीरदास की एक कविता है जिसमें कहा गया है

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर वाहे चोट ।।

परन्तु क्या वर्तमान का छात्र उस चोट को स्वीकार करते हुए उस प्रकार की पद्धति को सहन करने के लिए तैयार है? क्या शिक्षक उस प्रकार की पद्धति से उसको गढ़ रहा है, उसको बना रहा है, उसके भविष्य का निर्माण कर रहा है। शिक्षक के लिए उन छात्रों में उस प्रकार का समर्पण यानि 'डेडिकेशन' है क्या ? शिक्षक छात्र के बीच परस्पर विश्वास का वातावरण बना है क्या? एक छोटा सा प्रसंग है ध्यान में आता है कि हमारे एक बहुत अच्छे, बहुत बड़े विश्वविद्यालय के गणित के प्रोफेसर थे। उन्होंने एक प्रसंग का स्मरण करते हुए वह बता रहे थे कि मेरा (उनका) पौत्र है वह शिशु मंदिर में कक्षा चतुर्थ में पढ़ता है। उसका गणित के गृहकार्य (होम वर्क) में एक प्रश्न का उसका उत्तर गलत था। परन्तु प्रवाह के क्रम में आचार्य जी ने उस गलत उत्तर पर सही का निशान लगा दिए। विद्यार्थी के बाबा, जो एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे, ने उस होमवर्क की कॉपी को देखा और देखने के बाद उन्होंने पहला कमेंट किया कि यह सवाल का जवाब ही गलत है। यह जो सही का निशान लगा है, ठीक नहीं है। उस विद्यार्थी का जो उत्तर था, हम कल्पना कर सकते हैं कि चतुर्थ में पढ़ने वाला विद्यार्थी, एक लगभग सात-आठ या नौ वर्ष की आयुवाला उसने विश्वास से कहा कि नहीं, मेरे आचार्य जी ने इस पर सही का निशान लगाया है तो वह सही ही है। वास्तव में यह जो सम्बन्ध है विद्यार्थी और शिक्षक के बीच का, यह उसके जीवन की सम्पूर्ण रचना तक को तैयार करवाता है।

तीसरा घटक : अभिभावक

अभिभावक शिक्षा क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण घटक है। समग्रता से चिंतन करने पर ध्यान में आता है कि अभिभावक कैसा हो? इस शब्द को परिभाषित करने के लिए भारतीय दृष्टिकोण से व्यापक विश्लेषण किया गया है। हम किस दृष्टि से विद्यार्थी का निर्माण करना चाहते हैं। विद्यालय के उत्तम वातावरण के साथ, विद्यालय परिवेश से विद्यार्थी को दिया जाने वाला सार्थक संदेश है। वह परिवार के वातारण से मिलने वाले संदेश के साथ किस प्रकार का समन्वय करता है इस पर भी हमारा चिंतन होना चाहिए। अभिभावक के परिवेश से भी विद्यार्थी को संदेश मिलता है। केवल विषय का ज्ञान ही नहीं बल्कि विद्यालय और अभिभावक दोनों एक दूसरे के पूरक नहीं रहेंगे तो सम्पूर्ण जीवन में विद्यार्थी भ्रमित होता रहेगा। इसलिए दोनों एक दूसरे के पूरक होने चाहिए। विद्यालय का वातावरण उस विद्यार्थी को एक राष्ट्रभक्त नागरिक बनाने के लिए उसके लिए अनुकूल होना चाहिए। ये दोनों एक कैसे हों इसमें अभिभावक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थी विद्यालय में 8 घंटे समय का सदुपयोग कर विद्यालय के वातावरण से अलग होकर 16 घंटे अपने घर में ही व्यतीत करता है। पारिवारिक प्रबंधन सुदृढ़ हो इसलिए शिशु मंदिर योजना का एक मुख्य अंग अभिभावक प्रबोधन है। अभिभावक के साथ समन्वय भी हमारा ध्येय है। भारतीय दृष्टिकोण से कहा गया है कि विद्यालय के द्वारा निरंतर अभिभावक प्रबोधन होते रहना चाहिए। अतएव इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में आग्रह किया गया है कि विद्यालय द्वारा अभिभावक परिवार को विद्यार्थी के हित में मार्गदर्शित किया जाए। अभिभावक परिवार को साथ में लेकर चलना, उस दृष्टि से निर्माण करने के लिए उसे सिद्ध करना यह कार्य विद्यालय का भी होना चाहिए।

चौथा घटक : समाज

समाज के वातावरण के प्रभाव से विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक प्रभावित होते हैं। अतएव उस समाज को भी सही दिशा में लेकर चलना इस शिक्षा नीति में आता है। पीपीपी मॉडल-'पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप' यानि समाज, शिक्षालय और अभिभावक कुल मिलाकर जो यह समुच्चय है यह तीनों अंग जब साथ में मिलेंगे तो इस प्रकार की कल्पना से विद्यार्थी का निर्माण हो पाएगा।

पाचवाँ घटक : प्रशासन

प्रशासन की भूमिका कैसी हो? सामान्य रूप से जब हम भारतीय दृष्टिकोण की बात करते हैं तो प्रत्यक्ष रूप से हमारे यहाँ गुरुकुलों की व्यवस्था चलती थी। गुरुकुल में ही विद्यार्थियों का अध्ययन-अध्यापन होता था। उस काल में प्रशासन की भूमिका नगण्य होती थी। परन्तु कालान्तर में प्रशासन की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में फिर से इस व्यवस्था को बहाल करने का आग्रह है। इस ओर इंगित किया गया है कि प्रशासन की भूमिका एक सहयोगी के रूप में होगी न कि निर्णायक की। निर्णय करने की प्रक्रिया में शिक्षक, अभिभावक और समाज को सहभागी बनाना चाहिए। इस शिक्षा नीति में एक बात क्लस्टर डेवलपमेंट की आई है। सर्वांगीण रूप से इसका क्रियान्वयन इस प्रकार है-इसमें शिक्षालय, समाज और अभिभावक इन तीनों का इंवाल्वमेंट यानि तीनों मिलकर इस कार्य को करेंगे। इसमें केन्द्र में विद्यार्थी को रखकर उसके सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करेंगे जिससे वह एक जिम्मेदार नागरिक बने। वर्तमान में शिक्षा अर्थ से जुड़ गई है इसलिए प्रशासन समय-समय पर इस बात की चिंता करेगा कि शिक्षा का आधार व्यावसायिक न बन जाए। शिक्षा के क्षेत्र में उस दृष्टि से उसका अवलोकन करने का कार्य प्रशासन का रहेगा। प्रशासन की भूमिका न्यूनतम रहे और शिक्षाविदों की भूमिका अधिकतम रहे, इस प्रकार का आग्रह इस शिक्षा नीति में होगा।

इस शिक्षा नीति में एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु की ओर इंगित किया गया है वह है भारतकेन्द्रित शिक्षा का सकारात्मक पक्ष यानि मातृभाषा में शिक्षा देना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए जो शब्दावली प्रयोग की गई हैं वह है 'फाउण्डेशन स्टेज' यानि प्रारम्भिक शिक्षा। जिसे हम प्राथमिक शिक्षा कहते हैं। मातृभाषा में देने का आग्रह किया गया है। यह क्यों किया गया? क्या किसी भाषा से विशेष लगाव या किसी भाषा से विशेष दुराव के कारण? ऐसा नहीं है। यह 'साईंटिफिक फैक्चुअल' यथा मनोवैज्ञानिक तथ्य से सिद्ध बात है। दुनिया के जितने भी शिक्षाविद् हैं उन्होंने वास्तव में एक विस्तारित योजना के अनुसार इस बिन्दु पर विचार और विवेचन किया है। उन सभी की धारणा है कि इस मूल आयु में जहाँ संवेग अधिक मात्रा में होते हैं, जहाँ भावनाओं की प्रधानता होती है, वहाँ पर मातृभाषा में उन्हें शिक्षा दी जाए तो उसके ज्ञानात्मक पक्ष का ही विकास नहीं होगा बल्कि उसके भावात्मक पक्ष का भी विकास होगा। वह विद्यार्थी को उस विषय को सही में सही अर्थ मे,ं सही संदर्भ में, जिस दृष्टि से उसे समझना चाहिए, यह अधिकांश रूप में आ पाएगी। भारतीय चिंतन इस बात की चर्चा करता है। इस नीति में भी होलेस्टिक चिंतन की बात आई है। समग्रता को लेकर चलना है। समग्र विकास हेतु पंचकोशात्मक विकास भी है। समग्र विचार में सप्तमंडलीय आधार है। समग्र विचार के अंदर जो दोनों पक्ष होते हैं, विकास के आंतरिक और बाह्य, इन दोनों पक्षों में वह जो सप्तमंडलीय आधार है उसकी चर्चा भी शिक्षा नीति करती है। होलेस्टिक डेवलपमेंट का आधार जो भारतीय चिंतन है, वह है आंतरिक व बाह्य विकास। आंतरिक विकास का सप्तमंडल क्या है? इसमें शरीर है, मन है, प्राण है, बुद्धि है, आत्मा है, स्मृति है और चित्त है। ये चित्त उसके पूर्व जन्मों के साथ उसको 'को-रिलेट' करता है। शरीर, मन, प्राण और आत्मा के साथ जब बुद्धि और चित्त का 'कम्बीनेशन' होता है तो भारतीय दर्शन कहता है कि यह जो सप्तमंडलीय आन्तरिक विकास है यह पूर्व जन्मों के संस्कारों की निर्मिति के आधार पर आगे

बढ़ता है। इससे आंतरिक विकास की दिशा बनती है।

बाह्य विकास क्या है ? व्यक्ति है, परिवार है, समाज है, राष्ट्र है, विश्व है तथा सार्वभौमिकता है। इस बारे में कहा गया कि जो सर्वभौमिकता है, वह परमेष्टि है। व्यक्ति से लेकर उस परम तत्त्व तक जिसको हम सप्तभुवन कहते हैं, सप्तपदी कहते हैं, व्यक्ति से बुद्धि और बुद्धि से चित्त का विकास ही वास्तव में होलेस्टिक डेवलपमेंट है। यह समग्र विकास को लेकर चलता है और संकेत रूप में इस शिक्षा नीति में आग्रहपूर्वक इसे कहा गया है।

पंचकोशात्मक व उसके साथ सप्तमंडलीय विकास की बात में आंतरिक और बाह्य स्थिति में संयोजन से भारतीयता का प्रकटीकरण होता है। भारतीयता के प्रकटीकरण को एक शब्द में कहा गया 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' पूरा विश्व वर्तमान में पर्यावरण की समस्याओं, ओजोन की परत में छेद होने की समस्या आदि का चर्चा कर रहा है। कुछ दिन पहले जो स्पैरो दिवस मनाया गया। इस दिवस पर एक छोटी सी चिड़िया तक को लेकर चिंता की गई। हमारे यहाँ भूमिसूक्त है जिसमें 16 श्लोक दिए गए हैं जिसके आधार मनुष्य का प्रकृति के साथ संबंध, उसके बारे में चिंतन आदि सभी प्रकार की बातें भूमिसूक्त में है। इन 16 श्लोकों के आधार पर जो कुछ बताने का प्रयास किया गया है वही भारतीय चिंतन के आधार 'होलेस्टिक डेवलपमेंट' हेतु 'होलेस्टिक एप्रोच' के उस प्रकार की दिशा निर्धारित करता है। इस शिक्षा नीति में भी उसी तरह से, उस दृष्टि से सोचने की बात की गई है। केवल आईक्यू के आधार पर काम नहीं बनेगा। आईक्यू, ईक्यू, एसक्यू इस प्रकार की बात की चर्चा तो पहले से बहुत सालों से चली आ रही है।

उक्त शिक्षा नीति में एक नई चीज को परिभाषित किया गया है। वह है ह्यूमिनिटी कोर्सेस यानि सम्पूर्ण मानवता। यही तो वसुधैव कुटुम्बकम् है। सम्पूर्ण मानवता को अपनाकर चलना। सम्पूर्ण विश्व के में उस परमात्मा की छवि को देखना, ''सियाराममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।''

गोस्वामी तुलसीदास जी जब इस बात को कहते हैं तब 'सियाराम मय सब जग जानी' का तात्पर्य ही उस विश्व को अपने तादात्म्य से जोड़ना। यह जो भारतीय दृष्टिकोण है, वास्तव में उस समग्रता के विकास की बात करता है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में उन चार बातों की चर्चा की गई थी। पाश्चात्य जगत् अभी भी जिस नीति को फॉलो करता चला आ रहा है। उनका चिंतन केवल संकुचित मात्रा में उस बात को प्रतिबिम्बित करता है।

Learning to know, Learning to do, Learning to be & Learning to live togather. यह पाश्चात्य जगत् का चिंतन हैं इसमें एक साथ समग्रता में कैसे रहना। हमारे यहाँ 'अन्योन्याश्रित' की बात की गई है। हमारे यहाँ जो व्यक्ति से परमेष्टि तक की बात की गई है, जिसमें समाज के साथ हमारे संबंध कैसे हैं ? 'कोरिलेशन' की बात इसमें की गई है। हमारे यहाँ 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यानि सम्पूर्ण समाज को श्रेष्ठ बनाने की जो संकल्पना है, उस भारतीय दृष्टिकोण को ही परिभाषित करती हैं। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उसी आशय को व्यक्त किया गया है।

इसमें एक और चिंतन है, मूल्यांकन की प्रक्रिया क्या होगी ? हम जिस प्रकार के विद्यार्थी, जिस प्रकार की पीढ़ी का निर्माण करना चाहते हैं, उस पीढ़ी का मूल्यांकन कैसे होगा ? यह हो रहा है कि नहीं हो रहा है इसके बारे में जानेगे कैसे ? तो इसके मूल्यांकन के लिए भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ 360 डिग्री वाला 'रिवैल्यूएशन'। इसका मतलब यह नहीं है कि केवल पुस्तकीय पाठ के आधार पर कुछ प्रश्नपत्र तैयार करने व उसके आधार पर केवल उत्तर लिख देने से ही उसका आकलन हो जाएगा। इतना नहीं, वह तो केवल उसका लघुतम रूप है। शिक्षक द्वारा विद्यार्थी का मूल्यांकन, परिवार द्वारा उसका मूल्यांकन, साथ पढ़ने वाले सहपाठियों प्रति किए गए व्यवहार से मूल्यांकन, समाज द्वारा उसका मूल्यांकन। वह अपनी जिम्मेदारी को, अपनी 'रिस्पॉसिबिलिटी' को किस प्रकार निर्वहन करता है, उसका मूल्यांकन। मूल्यांकन एक कन्टीन्युअस एवं कम्प्रीहेंसिव इवैल्यूएशन है। ऐसी पद्वति पिछले दिनों सी.बी.एस.ई. के माध्यम से आई थी। इस बात को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में '360 डिग्री के मूल्यांकन' से को-रिलेट कर अपेक्षित किया गया है।

भारतीय संदर्भों को इसमें संकेत रूप में दिया गया है परन्तु इसके आधार पर हमारी क्या भूमिका है? तीन बातों की अपेक्षा है राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अक्षरशः पढ़ना, शब्दशः पढ़ना, उन्हीं-उन्हीं पंक्तियों को एक बार पढ़ने से काम नहीं चले तो बार-बार यानि पुनः-पुनः पढ़ेंगे तो इसका अर्थ स्पष्ट होता चला जाएगा। उस अध्ययन पर चिंतन करना। हम किस भूमिका में हैं विद्यार्थी के भूमिका में, शिक्षक के रूप में, अभिभावक के रूप व प्रशासन के प्रतिनिधि के रूप में। जिस किसी भी भूमिका में हों, यह जो भारतकेन्द्रित शिक्षा का पक्ष है उसके के लिए अपना 'रोल' कैसे 'प्ले' कर रहे हैं, उसके बारे में अपने को तैयार कर अपनी समझ बढ़ाने के लिए तैयारी करना। केवल शिक्षा नीति की इन चीजों को समझने से काम नहीं चलेगा इसके लिए हमें अपनी मनःस्थिति को पूर्ण तैयार करना, विशेषकर हम जो शिक्षा जगत् के हैं यदि इसे ठीक तरह से नहीं समझ सके तो एक अच्छा डाक्यूमेंट बनने के बाद भी भारतकेन्द्रित शिक्षा के आधार पर, एक अच्छी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनने के बाद भी, उसका हम जो परिणाम चाहते हैं, कैसे मिलेगा ? विद्या भारती में काम करने वाले हम सभी लोग 68-69 सालों से इस प्रकार के विषयों को लेकर जो चल रहे हैं। विद्या भारती के लक्ष्य में लिखा हुआ है कि हम एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना चाहते हैं जिसके माध्यम से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है। इसी से एक विशिष्ट प्रकार की युवा पीढ़ी का निर्माण सम्भव हो सकेगा।

Hkkjrh; /keZ'kkL= % ,d vuq'khyu

चिंतन

डॉ० धीरेन्द्र झा

संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान,
अनेक पुस्तकों के लेखक,
'भाऊराव देवरस सेवान्यास' सम्मान
युवा लेखक सम्मान एवं अनेक
सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त
प्राचीन गौरवमयी शिक्षा प्रणाली पर
पुस्तक का प्रकाशन

संपर्क
मो. 9939467860

इस प्रकृतिपुरुषात्मक जगत् में जो कुछ प्रत्यक्ष -अप्रत्यक्ष , ज्ञात-अज्ञात और अतीन्द्रिय हैं उन सभी वस्तुओं को हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने अपने दिव्य अलौकिक ज्ञान और अनुभव के आधार पर बहुत पूर्व ही जान लिया था। हमारे भविष्यद्रष्टा सर्वज्ञानमय पूर्वजों ने अपने ज्ञान-विज्ञान, आचार-विचार का जो लिपिबद्ध संग्रह समाज जीवन में व्याप्त किया उसे धर्मशास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता है। धर्मशास्त्र की शाब्दिक व्युत्पत्ति है- धर्मं यद् शासते, तदनुकूलं आचारयितुं प्रचोदते तद् धर्मशास्त्रम्। धर्मस्य शास्त्रम् अथवा धर्माय शास्त्रम्। अर्थात् धर्मशास्त्र धर्म की सत्ता, नियमों व क्षेत्राधिकार का नियामक शास्त्र या विद्या है। द्वितीयतः धर्मशास्त्र धर्म के स्वरूप व प्रकृति का निर्धारण एवं नियंत्रण करता है। तृतीयतः जिस शास्त्र के क्रमबद्ध अध्ययन से मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं वैयक्तिक धर्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान मिलता है, वही धर्मशास्त्र है। जिसके द्वारा मनुष्य कर्तव्यों का सम्यक् ज्ञान और कल्याण के मार्ग का दर्शन करता है, वह धर्मशास्त्र के नाम से जाना जाता है। सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? आखिर कौन सी ऐसी वस्तु है जो मानव और पशु दोनों में अंतर करती है? अतः सर्वप्रथम हम धर्म के स्वरूप पर विचार करें।

धर्म से हीन व्यक्ति पशु के समान है और धर्महीन राष्ट्र कुराष्ट्र है। मनु के अनुसार

''वेद स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।''

गीता के अनुसार ''प्राणिनां साक्षात् अभ्युदय निःश्रेयस हेतुः स धर्मः।

अर्थात् धर्म वह है जिसमें सांसारिक अभ्युदय और आध्यात्मिक उन्नति दोनों ही प्राप्त होती हैं। धर्मचिन्तन मनुष्य के पक्ष में प्रकृतिगत है वह मनुष्य को स्वभाव सहित, ऐसे अविच्छिन्न भाव में जड़ित है कि जब तक मनुष्य अपने देह तथा मन का त्याग नहीं कर पाता, तब तक उसके लिए धर्मत्याग असंभव है। जितने दिन मनुष्य में चिंतन-शक्ति रहेगी, उतने दिन यह यत्न भी चलेगा और उतने दिन किसी न किसी आकार में उसका धर्म प्रत्येक स्थिति में जीवित रहेगा। जगत् का उपकार करो -यही एकमात्र धर्म है।

''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' इस तत्त्वज्ञान के अन्वेषक महर्षि दयानन्द ने उदयपुर के शास्त्रार्थ में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा था- 'धर्म वह है जिसको निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य और अन्याय अस्वीकार हो। तैत्तरीयाण्यक में कहा गया है- ''धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति। धर्मेण पापमनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।।''

धर्म से जगत् की प्रतिष्ठा है, धर्म के कारण ही प्रजा जीवन को धारण करती है, धर्म के कारण पापाचार से लोग अलग रहते हैं। धर्म ही सबसे बढ़कर है। अर्थात् धर्म का संबंध न केवल मानव अपितु सम्पूर्ण जगत् में परिव्याप्त प्राणियों से है, अतः जो सभी के द्वारा मन, कर्म और वचन में दृढ़ आस्था, श्रद्धा, भक्ति के साथ धारण किया जाए वही धर्म है। महर्षि व्यास के अनुसार

''धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।
यत् स्याद् धारण संयुक्तं स तु धर्म
इति स्मृतः।।''

दिनकर के विचार में धर्म एक विशेष प्रकार की साधना है। जिसका सहारा परलोक अथवा मोक्ष-प्राप्ति के लिए लिया जाता है। मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों के प्रति अद्रोह, दया और दान यही सनातन धर्म है। वस्तुतः धर्म सम्पूर्ण जीवन की पद्धति है वह नश्वर में अविनश्वर तथा अचिर में चिर का अनुसंधान है, धर्म जीवन का स्वभाव है, धर्म ज्ञान और

विश्वास से अधिक कर्म एवं आचरण में बसता है। महर्षि गौतम ने धर्म के लक्षणों को आत्मा के गुण के रूप में प्रतिपादित किया है -

अथाष्टौ आत्मगुणाः दयासर्वभूतेषु क्षान्तिः, अनसूया, शौचम्, अनायासः मंगलम् अकार्पण्यम् अस्पृहेति।

अर्थात् सभी प्राणियों पर दया, क्षमा, दूसरे के दोष दर्शन की प्रवृत्ति से बचना, शौच (बाह्य व आभ्यंतर पवित्रता), अनायास (हानिकारक अति परिश्रम वर्जन), मंगल (शुभकर्म, प्रवृत्ति, भावना), अकार्पण्य (दानशीलता), अस्पृहा (निर्लोभता) ये आठ आत्मा के गुण हैं। इन्हें ही भगवान् मनु ने धर्म का लक्षण बताया है।

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्।।''

धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी (यथार्थ ज्ञान), विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं।

भगवद्गीता में अभय-सत्त्व-संशुद्धि (अन्तः करण की स्वच्छता), ज्ञान-योग-व्यवस्थिति (तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति) सात्विक दान, दम, यज्ञ (भगवत् पूजन, अग्निहोत्रादि अनुष्ठान और सत्कर्म का आचरण), स्वाध्याय (वेदादि शास्त्रों का अध्ययन), तप, आर्जव (अन्तःकरण की सरलता), अहिंसा, सत्य (यथार्थ प्रियभाषण), अक्रोध (अपकारी पर क्रोध न करना), त्याग, शान्ति, अपैशुन (किसी की निन्दा या चुगली न करना), दया, अलोलुत्व (निर्लोभता-अनासक्ति), मृदुता, ह्री (निषिद्धाचरण में लज्जा), अचापल (व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव) तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोह (शत्रुता का अभाव), अतिमानता (अपने आप को श्रेष्ठ, पूज्य आदि मानने का भाव का अभाव) ये छब्बीस दैवी संपदाएँ मनुष्य के सद्गुण हैं और इनका सम्यक् आचरण ही धर्म का सम्यक् परिपालन है।

विश्व का प्रत्येक पदार्थ जिसके बल पर टिका रहता है इस सहज शक्ति का नाम धर्म है। धृ धातु से निष्पन्न धर्म शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ यही शक्ति रूप है। कहा गया है -

'धर्मो हि वीर्यं ध्रियत हि धर्मोधृतो धारयेत् हि विश्वम्' ।

धर्म पर ही धर्मी अवलम्बित रहता है। यह धर्म मनुष्य का अनुसरण निरन्तर करता है। यह सनातन है।

''एक एव सुहृद धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः। ''

अर्थात् धर्मानुसार आचरण से सभी का कल्याण व सुख स्वाभाविक रीति से होता है। महर्षि व्यास के मतानुसार

''ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित्शृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते ।।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्रकारान्तर से याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म के चौदह स्थान बताये हैं : -

''पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।।''

याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्मशास्त्र के प्रवर्तक महर्षियों का नाम अत्यंत ही आदर के साथ लिया गया है -

मन्वत्रि विष्णु हारीत याज्ञवल्क्योशनोङ्गिरा :,
यमापस्तम्ब संवर्तः कात्यायन बृहस्पति :।
पराशर व्यास शंखलिखिता दक्षगौतमों ,
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्र प्रयोजका :।

उपर्युक्त सभी ऋषि, महर्षि धर्मशास्त्रीय नियमों के प्रवर्तक हैं। इनमें कोई स्मृति तो कोई धर्मसूत्र के रचयिता हैं। किन्तु इनमें भी वही धर्मसूत्र व स्मृतियाँ विद्वत् समाज में आदरणीय है जो मनुस्मृति का अनुसरण करती हैं। स्मृति शब्द भी धर्मशास्त्र का ही द्योतक है। यह विद्वानों की मान्यता है -

'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति :।
ते सर्वार्थेष्व मीनांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ।।'

वेद सभी धर्मों का मूल उत्पत्ति स्थल है और स्मृतियाँ भी वेदमूलक होने पर ही प्रामाण्य है। अतः धर्मनिर्णय में वेद ही परमप्रमाण है। मनु के अनुसार -

''वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरेव च ।।''

अर्थात् सर्वतोभावेन मानव धर्मशास्त्र समाज में पृथक् विषय होने के बावजूद भी मूलरूप से यह वेदों पर ही आश्रित है। हमारे धर्मशास्त्र में जिन वस्तुओं एवं पदार्थों का निर्णय किया गया है यदि मानव पूर्णरूपेण उनका अनुपालन करे तो वह भगवान् राम के समान धर्म की विग्रहवान मूर्ति बन सकता है। भारतीय धर्मशास्त्र के नियम सर्वाधिक प्राचीन और सभी परिस्थितियों में पालन योग्य हैं। मानव जैसे-जैसे सर्वांगीण प्रगति करता है, उससे उसके ज्ञान में ही वृद्धि होती जाती है। मनु के अनुसार -

''यथा-यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा-तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ।।''

उपर्युक्त आधार पर हमारा धर्मशास्त्र विज्ञानवादी सिद्ध होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने धर्म को छह प्रमुख भागों में बाँटा है -

(1) वर्ण धर्म (2) आश्रमधर्म (3) वर्णाश्रमधर्म (4) गुण धर्म (5) निमित्तधर्म और (6) साधारणधर्म। इसमें युग धर्म के अनुसार स्मृतियों का भी स्पष्ट निर्धारण किया गया है। यथा -

''कृते मानवोधर्मः त्रेतायां गौतमस्मृतिः ।
द्वापरे शंख लिखितं कलौ पराशर स्मृतिः ।।''

अर्थात् कृतयुग में मनु के अनुसार, त्रेता में गौतम के अनुसार,

द्वापर में स्मृतिशंख और कलियुग में पराशरस्मृति द्वारा निर्धारित धर्म व नियमों का पालन मानव को करना चाहिए।

हमारे धर्मशास्त्र में लोकाचार व रीतियों की प्रबलता को स्वीकारा गया है। इसमें कार्य और अकार्य पर भी विस्तृत रूप से विचार किया गया है। यथा -

गीता गंगा तथा विष्णुः कपिलाश्वत्थसेवनाम् ,
एकादशी व्रतं चैव सप्तमं न कलौ युगे ।

विष्णुं शिवं वा भजतां गुरोः पित्रोश्च सेविनाम् ,
गौ वैष्णव महाशैव तुलसी सेविनामपि ।।

न स्यात् कलिकृतो दोषः काश्यां निवसितामपि,
कलौ गुरुणां भजनमीशः भक्त्याधिकं स्मृतम्।

जपादौ यत्र या संख्या कलौ सा स्याच्चतुर्गुणा,
कलौ दानं महाश्रेष्ठं शिव विष्णोश्च कीर्त्तिनम्।

कृते यद्दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु,
द्वापरे यत्तु मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ।।

निष्कर्षतः धर्म की सम्पूर्ण वैज्ञानिकता इस तथ्य में निहित है कि वह सभी कालों, परिस्थितियों एवं विषमताओं में भी आचरणीय एवं पालनीय हो सके। भारतीय सनातन धर्म की यही विशेषता है।

भारतीय धर्मशास्त्र का सर्वाधिक वैशिष्ट्य इसका समन्वययात्मक स्वरूप है। पितृ परिचयहीन सत्यकाम यहाँ ब्रह्मज्ञानी हो सकता है, इतरा शूद्रा का पुत्र ऐतरेय ब्राह्मण की रचना कर सकता है। हमारे धर्मशास्त्र में जिन-जिन वस्तुओं एवं नियमों का निर्णय किया गया है, यदि मानव पूर्णरूपेण इनका अनुपालन करे तो वह महापुरुष एवं अनुकरणीय हो सकता है। मनु के अनुसार

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशदग्रजन्मन :।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवा :।।

भारतीय धर्मशास्त्र अपनी इन्हीं मौलिक विशेषताओं के कारण आदिकाल से ही मानव समाज की प्रेरणा एवं शक्ति का मूल स्रोत है।

श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अर्थात् कर्मयोग पर श्री मोहनदास करमचंद गांधी के विचार

'अपनी बाल्यावस्था में ही मुझे किसी ऐसे अध्यात्म-ग्रंथ की आवश्यकता प्रतीत हुई, जो मेरे जीवन काल में मोह तथा कसौटी के क्षण मेरा अचूक मार्गदर्शन करे। मैंने कहीं पढ़ा था कि, केवल सात सौ श्लोकों की मर्यादा में गीता में समस्त शास्त्रों तथा उपनिषदों का सार ग्रंथित कर दिया है। गीता पढ़ सकूँ, इसलिए मैंने संस्कृत सीखी। आज गीता मेरे लिए 'बाइबल' या 'कुरान' समान मात्र एक धर्मग्रंथ ही नहीं बल्कि उससे भी कहीं अधिक, प्रत्यक्ष माता ही है। अपनी लौकिक माता से तो मैं बहुत पहले ही बिछुड़ गया, परंतु तभी से गीता मैय्या ने उस रिक्तता की पूर्ण पूर्ति कर दी है। आपत्काल में मैं उसी का आश्रय लेता हूँ।

स्व. लोकमान्य तिलक जी को उनकी अध्ययनशीलता तथा विद्वता के ज्ञानसागर से 'गीताप्रसाद' के बल पर ही यह दिव्य टीका मौक्तिक प्राप्त हुआ। बुद्धि द्वारा खोजे जाने वाले व्यापक सत्य का निधान ही उन्हें गीता में प्राप्त हुआ। गीता जी पर तिलक जी की टीका ही उनका शाश्वत स्माारक है। स्वतंत्रता के युद्ध में विजयश्री प्राप्त हो जाने के पश्चात् भी वह यथावत् बना रहेगा। उस समय भी तिलक जी का निष्कलंक चारित्र्य और गीता पर उनकी महान टीका, इनके कारण उनकी स्मृत्ति चिर-प्रेरक बनी रहेगी। उनके जीवनकाल में अथवा सांप्रत भी उनसे अधिक व्यापक और गहरा शास्त्रज्ञान रखनेवाला व्यक्ति खोज पाना कठिन ही है। गीता पर उनकी इस अधिकारपूर्ण टीका से श्रेष्ठ और मौलिक ग्रंथ की निर्मिति न अब तक हुई है, न निकट भविष्य में होने की संभावना है। गीता और वेद इनमें से निर्माण होने वाले प्रश्नों का जो निराकरण तिलक ने किया है, उससे अधिक गहन और व्यवस्थित संशोधन आज तक किसी ने नहीं किया है। अथाह विद्वता, असीम स्वार्थत्याग तथा आजन्म देशसेवा के कारण ही जनता जनार्दन के हृदय में तिलक जी ने अद्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया है।'

(वाराणसी-कानपुर में दिए अभिभाषण से)

Hkfe ¼i"Foh½ rÙo % ekrk dk nqykj

प्रकृति

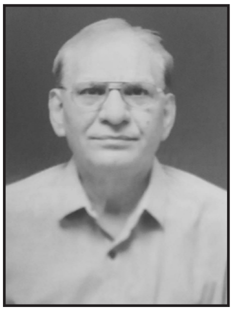

डॉ० उमेश चन्द वर्मा
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय
शिक्षाविद्, विचारक
शैक्षिक - सांस्कृतिक विषयों
पर लेखन,
सामाजिक कार्यकर्ता

संपर्क
मो. 9013319761

सृष्टि के विस्तार में पंचतत्त्वों का योगदान है। इन तत्त्वों की चर्चा करते हुए जहाँ आकाश को ब्रह्म तत्त्व माना जाता है वहीं पृथ्वी अथवा भूमि का परिचय मातृ तत्त्व के रूप में होता है। इस अनुभूति के दर्शन ऋग्वेद में होते हैं, जहाँ पृथ्वी को माता तुल्य माना गया है। यह भी सत्य है कि इस जगत् में हम सबके उद्‌गम का कारण माता है। इस अनुभूति का विस्तार अथर्ववेद के भूमि सूक्त में है जहाँ वर्णन आता है-यह पृथ्वी हमारी माता है, हम सब इसके पुत्र हैं-पुत्रों अहम् पृथिव्याः। ऋग्वेद की मान्यता से गंगा-यमुना आदि नदियाँ भी माता हैं। वनस्पतियाँ औषधियाँ माता हैं। माता जन्मदाता, पोषक, पालक एवं विधाता है। हमारी देह के सभी अंगों की निर्मिति का मूल आधार पृथ्वी है। पृथ्वी को माता जानना ऋग्वैदिक मंत्र रचना की प्रकृति भी है। इस अनुभूति में पृथ्वी माता के साथ आकाश पिता हैं। ऋग्वेद के अनुसार पृथ्वी और आकाश दोनों पहले मिले हुए थे। दोनों को मरुतों ने अलग किया। सृष्टि सृजन के पूर्व प्रकृति की सारी शक्तियाँ एक में ही स्थित थीं। पृथ्वी आकाश भी एक थे। तब दोनों का संयुक्त नाम रोदसी था।

ऋग्वेद में कहा गया है पृथ्वी उद्धतों से परिपूर्ण पर्वतों, वन, वृक्षों का भार वहन करने वाली क्षमारूपिणी है। प्रातः स्मरण में पृथ्वी माता से उसके धरती स्थल पर पाद स्पर्श के लिए क्षमा माँगी जाती है।

समुद्र वसने देवि, पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं, पाद स्पर्शं क्षमस्व मे।।

समुद्र रूपी वस्त्रों वाली, पर्वतरूपी स्तनवाली और विष्णु भगवान् की पत्नी, हे पृथ्वी देवी! तुम्हें नमस्कार करता हूँ । एक अन्य स्थान पर कहा गया है, ''हे माता हम औषधि, बीज बोने या निकालने के लिए आपको खोदें तो आपका परिवार, घासफूस, वनस्पति फिर से तीव्र गति से उगे-बढ़े। आपके मर्म को चोट न पहुँचे। अथर्व के पृथ्वी (भूमि) सूक्त में भूमि माता का विस्तार से स्तवन किया गया है। ऋषि ने भूमि के प्रत्येक पक्ष पर अपने भावों को व्यक्त किया है। पृथ्वी सूक्त अथर्ववेद के काण्ड 12 में 63 श्लोकों से युक्त है।

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में ऋषि कहते हैं, ''देवता जिस भूमि की रक्षा उपासना करते हैं वह मातृभूमि हमें मधु सम्पन्न करे। इस पृथ्वी का हृदय परम आकाश के अमृत से सम्बंधित रहता है। वह भूमि हमारे राष्ट्र में तेज बल बढ़ाए, साथ ही पृथ्वी को माता भी कहा गया है।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च ।
नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।।
ता सु नो धेह्यभि नः पवस्व
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।

हे पृथ्वी माता आपके हिम आच्छादित पर्वत और वन शत्रुरहित हों । आपके शरीर के पोषक तत्त्व हमें प्रतिष्ठा दें। यह पृथ्वी हमारी माता है, और हम इसके पुत्र हैं। हे, माता! सूर्य किरणें हमारे लिए वाणी लाएँ। आप हमें मधु रस दें, आप दो पैरों, चार पैरों वाले सहित सभी प्राणियों का पोषण करें। यह पृथ्वी विश्वम्भरा, हिरण्यवक्षा है, यह गौ है, सूर्य उसका ऋषभ है। इस पृथ्वी पर मनीषी लोग ज्ञान पूर्वक विचरण करते हैं। इन मनीषियों का मन प्रभू में स्थित रहता है और विषय वासनाओं के पीछे मरने वाला नहीं होता। अग्नि इस भूमि पर मुख्य देव के रूप में हैं। वैश्वानर रूप में यह अग्नि मनुष्यों के देह में निवास करती है। यह पृथ्वी, शिलाओं, मैदानों, पत्थरों व धूलि के भिन्न रूपों में है तथा प्रभु से धारित एवं मर्यादा से स्थापित की गई है। इस हिरण्यवक्षा पृथ्वी के लिए हम नमन करते हैं। यह हमारे लिए सुखकर हो।'

अथर्ववेद में ऋषि ने यथासम्भव नीचे सोने के लिए कुछ सुझाव दिए हैं। सोते समय पाँव पश्चिम में होने, सदा एक पासे (करवट) में न

लेटना तथा कभी उत्तान शयन (ऊर्ध्वमुख) अर्थात् पीठ के बल सोना भी आवश्यक बताया है। यह भी माता के सम्मान के लिए ही है।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणंसव्यमभि, भऊमि पार्श्वम्, उत्तानास्त्वा प्रतीचीं
यत्पृष्टीभिर्धिशेममहे।

मा हिंसास्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रत्शीवरि।।

हम समय पर भूमि माता की गोद में सुखपूर्वक शयन करें। हम लेटे हुए 'दक्षिण सव्यं पार्श्वं अभि' दाहिने अथवा बायें पार्श्व की ओर करवट लें तथा जब हम 'ऊर्ध्वमुख (उत्ताना) प्रतीचित्वा' अर्थात् पश्चिम की ओर पाँव करके तुझ पर पीठ के मोहरों के बल पर शयन करते हैं तब वहाँ हे भूमिमाता ! हमें हिंसित मत कर। हे जननी तू हमें हिंसित न होने देना। अंत में अतिशय वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति करते हुए ऋषि कहते हैं –

शांतिवा सुरभि स्याना कीलालोघ्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु में पृथिवी पयसा सह ।।

हे शांतिसम्पन्न, उत्तम गंध से युक्त, सुख देने वाली अमृत रस (मघु) को गाय की भाँति अपने थनों में धारण करने वाली क्षीरसम्पन्न भूमि, अपने ही आप्यायन के साधनों के साथ मुझे पुकार रही होती है। यह पृथ्वी मुझे भी पयस् प्राप्त कराए तथा पृथ्वी पर होने वाले गोदुग्ध, अन्नादि पदार्थ हमारे लिए नीरोगता देने वाले हों। हम दीर्घ एवं प्रतिबद्ध जीवन वाले होते हुए इस भूमिमाता के लिए बलि देने वाले हों। इस प्रकार हिरण्यवक्षा, मधुदूधे, सृष्टि की पालनकर्त्ता, क्षमामूर्ति, कमलवत् गंध से परिवेष्टित, पयस्विनी माता के लिए भावविभोर, पुत्र कृतज्ञता प्रकट करता हुआ अपने हृदय के उद्गार इस प्रकार व्यक्त करता है–

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे, त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोहम्।
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे, पतत्वेष कायो नमस्ते–नमस्ते ।।

हे वात्सल्यमयी मातृभूमि, तुम्हें सदा प्रणाम करता हूँ। हे हिन्दूभूमि, तूने ही मेरा सुखपूर्वक संवर्धन किया है। हे मंगलमयी पुण्यभूमि! तेरे लिए मेरी यह काया (नश्वर शरीर) भी अर्पित करता हुआ तुझे बारं बार प्रणाम करता हूँ। ऐसा मातृभक्त कृतज्ञ पुत्र माता का अहित सोच भी नहीं सकता। वह सदैव माता की सुख समृद्धि तथा सुरक्षा की चिंता करता है। अथर्ववेद का ऋषि कहता है :–

नो द्वेषत्पृथ्वी यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसायो वर्धे। तं नो भूमे रंधय
पूर्वकृत्वाारि ।।

हे भूमिमाता, जो भी हमसे द्वेष करता है, जो सेना के द्वारा हमपर आक्रमण करता है, जो मन से हमारा उपक्षय करता है, अशुभ चाहता है, जो हनन साधन आयुधों से हमारा क्षय करता है। शत्रु कृन्तन में सबसे प्रथम स्थान में स्थित हमारे उस द्वेष्टा को वशीभूत कर अथवा विनष्ट कर। वेद में पृथ्वी माता की भावपूर्ण स्तुति की गई है। तथा उसके द्वारा हमारा पोषण करने की प्रार्थना है। इस सूक्त में रसात्मकता, भावप्रवणता तो है साथ ही कलात्मकता, पदावली का सौंन्दर्य भी परिलक्षित होता है। 63 मंत्रों के इस पृथ्वी सूक्त को अमेरिकी विद्वान् ब्लूमफील्ड ने विश्व की श्रेष्ठ कविता बताया है।

पृथ्वी के पाँच गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध। इनमें गंध प्रधान गुण है। शास्त्रों में आता है 'तत्र गंधवती पृथ्वीः अर्थात् पृथ्वी का मूल गुण गंध है। प्रातः स्मरण के पंचतत्त्व में आता भी है –

पृथ्वी सगंधा सरसास्तथापः स्पर्शी च वायुर्ज्वलनं च तेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव, कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

अर्थात् अपने गंध रूपी गुण से युक्त पृथ्वी, रस गुण से युक्त जल, स्पर्श गुण से युक्त वायु, ज्वलनशीलता के गुण से युक्त तेज (अग्नि) तथा शब्द रूपी गुण से युक्त आकाश महत् तत्त्व बुद्धि के साथ मेरे प्रभात को मंगल करे।

पृथ्वी में गंध अंतर्निहित है, वह किसी हेतु के माध्यम से प्रकट होती है। सर्वविदित है गर्मियों में जब पृथ्वी पर जल का छिड़काव किया जाता है तो एक सोंधी सी गंध आती है। वह पृथ्वी की सुगंध है। अथर्ववेद का ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

यस्य गंधः पृथिवी संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गंधर्वा अप्सरसचव भेजिरे तेन मा सुरभिं मा नो द्विक्षत कश्चन्।।

यस्ते गंधः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्या पृथ्वी गंधमग्रे तेन मा सुरभि कृणु मा नो दिव्क्षत् कश्चन्।।

गंध पृथ्वी का विशेष गुण है। सब औषधियाँ तथा पृथ्वी पर होने वाले सब इस गंध को धारण किए हुए हैं। ज्ञानी पुरुष व क्रियाशील स्त्रियाँ उत्तम यशोगंध वाले होते हैं। हमारा जीवन भी ज्ञान व कर्म से यशस्वी व सुगंधित हो। कोई हमसे द्वेष न करे। कमल गंध की तरह हमारा जीवन उत्तम कर्मों की यशोगंध वाला हो। हस सब के प्रिय बने, किसी से हमारा द्वेष न हो। हम संसार सरोवर में कमल की तरह अलिप्त भाव से रहें।

हम लोगों का शरीर पृथ्वी से बना है इसलिए ही पार्थिव कहे जाते हैं। पृथ्वी से बनी इन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय है जो पृथ्वी के विशेष गुण गंध को ग्रहण करती है। जिसका स्थान नासिका का अग्रभाग है।

पृथ्वी का अर्थ है विस्तृत स्थल। ऋग्वेद में कहा गया है, इन्द्र ने पृथ्वी को फैलाया। तैत्रिरीय संहिता में भी पृथ्वी के 'प्रथित' होने या विस्तृत होने को 'प्रथ' धातु (फैलाना) से व्युत्पन्न माना गया है। निरुक्तकार यास्क ने भी 'प्रथ धातु से पृथ्वी के फैले हुए स्वरूप की व्युत्पत्ति की है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि मातृभूमि को माता मानने वाले ही सच्चे कुलीन हैं। उनमें कोई छोटा बड़ा नहीं। मातृभूमि, मातृभाषा और मातृ संस्कृति ये तीनों माता के समान सुख देने वाली हैं। यह भूमि वसुमति, औषधियों की जननी, दृढ़ धर्म द्वारा धृत मंगलकारिणी

सुखदायिनी है।

पृथ्वी के अनेक गुणों के कारण उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उसमें अभिहित अर्थों की ओर संकेत करते हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण उनके केवल संदर्भ दिए गए हैं यथा- पृथ्वी विस्तार के कारण पृथ्वी है। गौ माता गति के कारण गौ हैं। भूमि निवास योग्य होने के कारण भूमि है। वसुन्धरा :-रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण धरती वसुन्धरा है।

मही :- पूजनीय एवं इसमें प्राणियों के बड़े होने के कारण मही है। धरा व **धरणी :-** धारण करने के कारण धरा है। **अवनी :** प्राणियों की रक्षा करने के कारण अवनी है। **मेदनी :** समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण मेदिनी है। **स्थिरा :** अपने स्थान पर स्थित होने के कारण स्थिरा कहलाती है। **विश्वम्भराः** सबका भरण-पोषण होने के कारण विश्वम्भरा नाम से अभिहित होती है। **रसा :** रस से परिपूर्ण होने के कारण रसा नाम से जानी जाती है।

क्षमा : क्षमाशील होने के कारण क्षमा की देवी के रूप में जानी जाती हैं।

गोत्रा : सहनशील होने के कारण गोत्रा नाम से भी जानी जाती है।

सर्वसहा : सब कुछ सहने के योग्य होने के कारण वह क्षमाशील, गोत्रा के समान ही सर्वसहा भी पृथ्वी का एक नाम है।

अचल : स्थित होने के कारण अचल है। अनंता : अंतिम छोर न होने के कारण अनंता है।

इसके अतिरिक्त भी निरुक्तकार ने 16 अन्य नामों का वर्णन किया है। वास्तव में प्रत्येक पुत्र अपनी भावना की उद्दामता तथा अपने प्रति माता के वात्सल्य तथा उसकी उपयोगिता एवं गुणों के कारण उसे एक नया नाम प्रदान करता है। लौकिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। अतः यदि पृथ्वी माता है तो उसके असंख्य पुत्रों के समान ही उसके नाम भी असंख्य होंगे, ऐसी कल्पना की जा सकती है। इसी प्रकार पृथ्वी के उत्पत्ति के इतिहास पर, सृष्टि सृजन से लेकर आज तक चिंतन करने पर, उसके स्वरूप का भी बोध होता है। यथा -

मृण्मयी पृथ्वी- भुवनमात्र में प्रथम उत्पन्न होने के कारण इस भूमि को मृण्मयी कहा गया है। जल प्रधान आर्द्रा पृथ्वी में अग्नि और जल के मेल से मलाई रूप झाग फेन उत्पन्न होकर जब वह कुछ ठोस आकृति में परिवर्तित हो गया, तब वही मृद कहलाया। वही मृद पृथ्वी कहलाई।

अश्वमयी पृथ्वी- मृदा के तप्त होने पर सफेद और काली दो प्रकार की सिकता बनी और ढीली पृथ्वी को देवों ने कंकर-पत्थर से दृढ़ किया। इस प्रकार पृथ्वी अश्वमयी हुई। इसी प्रकार विभिन्न रत्नों, स्वर्ण आदि खनिजों को गर्भ में रखने के कारण रत्नगर्भा, विशाल ज्वालामुखी एवं ज्वलंत लावा से युक्त होने के कारण अग्निगर्भा के नाम से भी अभिहित होती है।

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबंधी विभिन्न प्रकार के विचार उपलब्ध हैं। उनमें ऋषि द्वारा विद्वानों को सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मंत्रों से भूमि को धारण करने का निर्देश दिया गया है। उनमें राजा को आदेश दिया गया है कि वह धन, औषधि, जल आदि को धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा करे। युजर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमि को अपने दुष्क्रमों से न बिगाड़े, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट न होने दें । उसी भूमि में मरणशील मनुष्य स्वधा और अन्न से जीवन धारण करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोग और सब रोग से रहित हो। दीर्घ काल तक जागते हुए अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएँ।

हमारे पूर्वज समूची प्रकृति को देवरूप ही देखते थे। शान्त पर्यावरण हमें आनन्दित करता है। अशान्त माता पृथ्वी और पिता आकाश हमारी अशान्ति का कारण बनते हैं। यजुर्वेद में एक लोकप्रिय मंत्र में समूचे पर्यावरण को शान्तिमय बनाने की स्तुति है। इस मंत्र में द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी से शान्ति की भावप्रवण प्रार्थना है।

ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिः ओषधयः
शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सत्यं बृहट्टमुग्रं दीक्षा तपो, ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य, पत्न्युरुं लोकं पृथिवी न कृणोतु ।।

मातृ पृथ्वी के लिए नमस्कार ! सत्य, ब्रह्मांडीय दैवीय नियमों, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म में विद्यमान आध्यात्मिक शक्ति, ऋषियों मुनियों की समर्पण भाव से किए गए यज्ञ और तप इन सब ने माँ धरती को युगों-युगों से संरक्षित और संधारित किया है। वह (पृथ्वी) जो हमारे लिए भूत और भविष्य की सहचरी है, साक्षी है, हमारी आत्मा को इस लोक से उस दिव्य ब्रह्मांडीय जीवन (अपनी पवित्रता और व्यापकता के माध्यम से) की ओर ले जाए। भूमि सूक्त, श्लोक -1

fla/kh yksdekU;rkvksa esa jkek;.k

लोक-संस्कृति

प्रो० रविप्रकाश टेकचन्दानी
सिंधी भाषा विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
सुप्रसिद्ध सिंधी साहित्यकार व
आलोचक तथा पूर्व अध्यक्ष,
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

संपर्क
मो. 95400 79735

लोक मान्यताएँ मनुष्य जीवन की मर्मस्पर्शी कसौटी होती हैं। जब तक मानव मन विद्यमान है लोक मान्यताएँ और परम्पराएँ जीवित रहेंगी। इन लोक मान्यताओं में छिपा उत्साह व आनन्द सर्वत्र प्रायः एक सा ही होता है परन्तु जब किसी देश पर काल और परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है तब उनका प्रतिबिम्ब लोक मान्यताओं में स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

सिंधी समाज की लोक मान्यताओं पर रामायण का विशेष व व्यापक प्रभाव रहा है। रामायण में उल्लेखित आदर्शों एवं मूल्यों का सिंधी लोक जीवन पर व्यापक, अमिट व गहरा असर हुआ है।

सिंध प्रदेश आर्य संस्कृति के उद्‌भव तथा आकस्मिक विकास का क्षेत्र माना जाता है। ऋग्वेद में सिंध भू-भाग के वैभव और समृद्धि का उल्लेख मिलता है।

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता
वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलभावत्युताधि वस्ते सुभगा
मधुवृधम् ।।
(ऋग्वेद : 10-75-08)

अर्थात्-सिंधु महानदी श्रेष्ठ अश्वों, उत्तम रथवाली, सुन्दर वस्त्र (परिधान) सुवर्णमय आभूषण वाली पुण्यवती, अन्नवती तथा पशुलोम वाली है। सिंधु नित्य तरुणी और अनेक तन्तुओं वाली है। वह श्रेष्ठ ऐश्वर्य शालिनी सौभाग्वती है तथा सिंधु मधुवर्धक पुष्पों से आच्छादित है।

भागवत् में सिद्धों और मुनियों की साधना स्थली 'नारायण तीर्थ' की पुण्य भूमि के रूप में सिंध का गुणानुवाद किया गया है। मुअन-जो-दड़ों की खुदाई में भी सिंध की अर्वाचीन और अत्यंत विकसित सभ्यता का प्रमाण मिलता है। प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'Language and Literatures of Modern India' में उल्लेख किया है- ''ऐसा लगता है कि आठवीं शताब्दी के आरम्भ में सिंध में अरबों के आगमन से पूर्व सिंध भारत के अन्य प्रान्तों के समकक्ष था। प्राचीन सिंध की जनता भारत के अन्य भागों के लोगों के साथ समान सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेती थी। सिंध में ब्राह्मण तथा बौद्ध संस्कृति के पुरातन स्थलों की खुदाई से जो कुछ मिला है उससे सिंधी जनता की उच्च कलात्मक उपलब्धि का प्रर्याप्त संकेत मिलता है।''

भारतीय इतिहास के आदिकाल में सिंध की सम्पन्नता सामान्य राजनीतिक परिवर्तनों के पश्चात् भी अक्षुण्ण बनी रही और सिंध प्रदेश राष्ट्र की मूलधारा से जुड़ा रहा। किन्तु अरब देशों में इस्लाम के उदय और द्रुतगति से विकास के साथ ही सहसा स्थिति बदल गई। सन् 712 ई. में मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध विजय कर वहाँ इस्लाम और मुस्लिम संस्कृति का बीजारोपण किया। सिंध पर इस आक्रमण के पश्चात् नरसंहार, अत्याचार, आर्थिक शोषण तथा बलात् धर्म परिवर्तन का जो दौर आरम्भ हुआ वह महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी एवं गुलाम तथा खिलजी वंश के सुलतानों के शासन काल तक चलता रहा। प्राचीन अवशेषों तथा धर्मस्थलों को ध्वस्त कर देने से सिंध की प्राचीन संस्कृति को करारा धक्का लगा। सन् 712 ई से सन् 1843 ई तक सिंध में मुस्लिम शासन रहा। इन ग्यारह सौ वर्षों के दीर्घकालीन विधर्मी शासन काल में हिन्दू समाज प्रायः आक्रांत और विपत्तिग्रस्त रहा। सिंध के पृथ्वीपुत्र अपनी मूल भूमि में ही अल्पसंख्यक हो गए।

इस समग्र ऐतिहासिक काल के दौरान सिंध प्रदेश में निरन्तर युद्धों के वातावरण तथा विधर्मी शासन के कारण सिंध से हिन्दुओं का स्थानांतरण होता रहा। शेष जो हिन्दू वहाँ रह गए उन्हें हिन्दू धर्म संबंधी संस्कारों की अभिव्यक्ति की आज्ञा नहीं दी गई। ऐसी विपरीत परिस्थितियों के कारण स्वाभाविक रूप में सिंध के सांस्कृतिक परिवेश में बदलाव आता गया।

सोलहवीं शताब्दी के अंतिम दशक (1592) में सिंध को मुगल साम्राज्य में मिलाने से सिंध एक बार पुनः भारतीय प्रभाव में आ गया। उन दिनों सम्पूर्ण उत्तर भारत भक्ति आन्दोलन से आन्दोलित था। इस आन्दोलन से सिंधी मन भी बच न सका। सूर, कबीर, तुलसी, मीराबाई और विशेषकर गुरुनानक तथा उनके उत्तराधिकारी सिख गुरुओं के कथनों तथा अनेक योगियों और सन्यासियों ने सिंधी संतों की वाणी को प्रभावित किया। रामायण के मूल्यों को मुक्त हृदय से सार्वजनिक रूप से स्वीकृति प्रदान कर आदर्श मूल्यों व मान्यताओं को समाज में पुनर्प्रतिष्ठापित किया।

सिंधी लोक मान्यताओं में रामायण :

वास्तव में, आधुनिक सिंधी हिन्दू के जनजीवन में 'रामायण' रचा बसा हुआ है। हमारे घरों में राम के जन्म से लेकर अयोध्या आगमन तक की कथा सुनी जाती है व इष्टदेव के रूप में पूजते हैं इस महाकाव्य के शेष चरित्र का गुणगान घर-घर में अपने घर के सदस्यों की भांति की जाती हैं। राम-लक्ष्मण का भातृप्रेम तथा सीता का पतिव्रत धर्म, लक्ष्मणरेखा, हनुमान की भक्तिभावना, विभीषण की सत्यपक्षधरता आदि अनेक उद्धरणों का सुखद जीवन निर्वहन में अत्यधिक सहायता मिलती हैं। यही नहीं जीवन-व्यवहार में हर कदम पर राम की छाप सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सिंधी जन जब एक दूसरे से मिलते हैं तो अभिवादन में साईं राम-राम कहते हैं। पत्र लेखनशैली में तो 'रामसत' का प्रयोग एक प्रकार का विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है। कठिन परिस्थिति में तो इस वाक्य को कहने की रूढ़ि ही चली आ रही है 'रखु राम ते सभु भलो थींदो' अर्थात् राम पर विश्वास करो सब भला ही होगा। 'राखे राम त मारे कौन' लोकोक्ति का चलन सिंधी समाज में अति प्राचीन है। व्यापार में अर्जित किए गए धन की गणना भी राम शब्द से प्रारम्भ करते हैं। जैसे :- राम, ब, टे, चारि, पंज आदि अर्थात् राम, दो, तीन, चार, पाँच आदि।

व्यक्तिगत नामकरण के सम्बन्ध में भी सिंधी हिन्दुओं की अभिरुचि अधिकांशतः राम की ओर ही उन्मुख दिखती है। यद्यपि सिंधी हिन्दुओं में सभी देवी, देवताओं के नाम पर व्यक्तिगत नाम रखे जाते हैं यथा सच्चानन्द, मुरलीधर, कृष्णचन्द, शंकरलाल, नृसिंहदास, नारायण दास तथापि रामायण के चरित्रों में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के नाम का सर्वाधिक व्यापक चलन रहा जैसे-जयरामदास, सतरामदास, रामप्रकाश, रामोमल, कंवरराम, टेऊंराम, नेवंदराम, सन्तराम, लछिमनदास, लछूमल, लखूमल, भरतकुमार इत्यादि। स्त्रियों के व्यक्तिगत नामों में कौशल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला व जानकी सिंधी समाज में अत्यधिक प्रचलित हैं।

रामायण का सिंधी समाज पर प्रभाव के तहत सिंधी हिन्दुओं पर दो लोक मान्यताओं ने अपना सर्वाधिक प्रभाव छोड़ा है। प्रथम श्रीराम, सीता और लक्ष्मण का वनवासकाल में चित्रकूट वास के उपरांत हिंगलाज देवी (शक्तिपीठ) के दर्शनार्थ सिंध जाना। द्वितीय सिंध के हिन्दुओं का श्रीराम का वंशज होना। सिंध (पाकिस्तान) के कराची नगर में (जो हिंगलाज यात्रा के मार्ग में पड़ता है) प्राचीन समय से अब तक रामबाग नामक मैदान प्रसिद्ध रहा है। लोगों का विश्वास है कि श्री राम, सीता व लक्ष्मण ने हिंगलाज जाते समय यहीं पर निवास किया था। कराची के पास ही मनोरा और हवाबंदर के बीच स्थित पहाड़ी व गुफ़ा को लोग रामझरोखा कहते हैं। वहाँ श्री राम, लक्ष्मण व सीता जी कुछ समय विराजे थे। सन् 1947 में पाकिस्तान बनने के बाद वहाँ की सरकार ने 'रामबाग' का नाम बदलकर 'आराम बाग' कर दिया है।

'हिंगलाज तीर्थ कराची से 64 मील उत्तर पश्चिम की ओर लसवेला क्षेत्र में स्थित है, जो अति प्राचीन और पुराण प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। इस कठिन यात्रा मार्ग में प्रसिद्ध सीता माता की कुइयाँ स्थित हैं। जहाँ कहा जाता है कि उन दिव्य यात्रियों ने विश्राम और जलपान किया था। उसके आगे राजाचन्द्र कूप स्थित है जो हिंगलाज तीर्थ से करीब आठ मील पहले है। श्रीराम, सीता व लक्ष्मण के इस हिंगलाज यात्रा का विस्तृत विवरण स्कन्द पुराण के उपपुराण हिंगुलाद्रि खण्ड की पूर्व संहिता में श्लोक ग्यारह से बत्तीस तक में वर्णित है।'

दूसरी लोक मान्यता यह रही है कि ब्राह्मण एवं यदुवंशियो को छोड़कर सिंध के प्रायः सभी हिन्दू 'लोहाणा' जाति के हैं। 'लोहाणा' श्रीरामचन्द्र के पुत्र 'लव' के वंशज हैं ऐसी मान्यता है।

रामायण की लोक मान्यताओं का प्रभाव सिंधी जनमानस पर कितना गहरा हुआ है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण कुछ वर्षों पूर्व मेरे विवाह के समय देखने को मिला जब मेरी माँ ने राम-सीता शब्द से अंकित सोने की मुद्रिका आशीर्वाद स्वरूप मुझे यह कहते हुए पहनने को दी कि तुम दोनों राम-सीता की तरह आदर्श दम्पति बनो। यह मुद्रिका मेरी दादी ने मेरे पिता जी को उनके विवाह के समय दी थी। जिसे मेरी माँ (सौभाग्य से जिनका नाम सीता है) सन् 1947 में देश विभाजन के कारण हुए पलायन के समय किसी तरह बचा सकी थीं। सिंधियों में विवाह के समय राम-सीता, राम-लक्ष्मण के नामों वाली मुद्रिका, राम-सीता की मूर्तियों के बने गले के हार इत्यादि आभूषणों को भेंट स्वरूप देना आवश्यक समझा जाता है। इसके पीछे यही प्रयोजन होता है कि पुरुष राम की तरह मर्यादित व स्त्रियाँ सीता की भाँति पतिव्रता बनें।

सिंध के अनेक शहरों, कस्बों, गाँवों व घरों में राम, सीता, लक्ष्मण व हनुमान के मंदिरों के प्रमाण भी मिलते हैं। हैदराबाद का दो सौ पचास वर्ष पुराना राम मंदिर रामभक्तों को विशेष प्रिय था। शिकारपुर के दो मंदिर 'साधुनि जी मन्दिर' एवं 'आउरनि वारों मंदिर' राम उपासकों के लिए आकर्षण के केन्द्र थे।

भारत के प्रसिद्ध सिंधी विद्वान् एवं भाषाविद् डॉ. मुरलीधर जैतली को कुछ वर्ष पूर्व सिंध भ्रमण का अवसर मिला, वे सिंध के प्राचीन मंदिरों की जीर्णशीर्ण अवस्था देखकर चकित रह गए। भारतीय दूरदर्शन

के राष्ट्रीय कार्यक्रम 'पाकिस्तान डायरी' के अनुसार देश विभाजन के पचास वर्षों बाद भी पाकिस्तान के सिंध प्रांत रह रहे सिंधी हिन्दुओं को रामनवमी, दीपावली, दशहरा उत्सवों को भव्य रूप से आयोजित करने की अनुमति आज तक प्राप्त नहीं है। परन्तु यह शाश्वत सत्य है कि प्रभु के प्रति श्रद्धा, विश्वास, भक्ति को तो बल प्रयोग करके मन से निकाला नहीं जा सकता है। सन् 1947 के विभाजन के बाद सिंधी हिन्दू भारत के अन्य प्रांतों में आकर बसे और जैसा व जहाँ भी अवसर मिला अपनी ईश भक्ति को मंदिरों का निर्माण करवाकर प्रकट किया। आज सम्पूर्ण भारत में जहाँ-जहाँ सिंधी निवास कर रहे हैं वहाँ-वहाँ अन्य मंदिरों के साथ राम मंदिरों का भी निर्माण किया है व कर रहे हैं। इसमें उल्लेखनीय है उत्तर प्रदेश के जिला एटा का 'श्री राम दरबार' व अयोध्या का 'श्री राम सिंधु धाम'। रामनवमी, विजयदशमी, धनतेरस, दीपावली, अन्नकूट भैयादूज पर्व सिंधी हिन्दुओं में भी विशेष श्रद्धा, भक्ति और हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं। चैत्र माह में शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन प्रभु राम अयोध्या के राजा दशरथ के घर माता कौशल्या के गर्भ से जन्म लेकर अवतरित हुए। इसी कारण विशेष रूप से रामनवमी का पर्व मनाया जाता है। रामभक्त आज के दिन व्रत रखकर रामायण का पाठ करते हैं। विभाजन के पूर्व सिंध के शहरों, कस्बों व गांवों-गावों में आज के दिन वहाँ की ग्राम पंचायत द्वारा मीठा भात बनवाकर जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में वितरित किया जाता है। यह परम्परा आज तक सिंधी समुदाय ने जीवित रखी है। इसी प्रकार विजयदशमी के इस महत्त्व को रामलीला के मंच के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। रामलीला का मंचन सिंध में उत्तर भारत जैसे अयोध्या, काशी, मथुरा, चित्रकूट आदि स्थानों से आई मंडलियों द्वारा किया जाता था। इन मंडलियों के प्रभाव से स्थानीय जन अछूते न रह सके और वे भी रामलीलाओं का स्वयं मंचन करने लगे। वर्तमान में भी रामलीलाओं का आयोजन सिंधी जन द्वारा सिंधी बाहुल्य क्षेत्रों मुम्बई, उल्लासनगर, पिंपरी, अहमदाबाद, कोटा, अजमेर, आगरा, लखनऊ व फैजाबाद में धूमधाम से किया जाता है।

विजयादशमी के दिन सिंधी समाज में जो विशेष आयोजन होता है, वह है सामूहिक मुंडन संस्कार। । प्रायः शिशु की आयु के तेरहवें माह में इस संस्कार को किया जाता है। परन्तु विजयदशमी के दिन सिंधियों में इस संस्कार के महत्त्व को अत्याधिक मान्यता प्राप्त है। विभाजन के पूर्व सिंध में दशहरा महोत्सव पर शमी वृक्ष के नीचे एकत्र होकर शिशु का मुंडन संस्कार किया जाता था। परन्तु विभाजन के पश्चात् भारत में इस वृक्ष विशेष की अनुपलब्धता के कारण किसी भी वृक्ष के नीचे एकत्र होकर मुंडन संस्कार किया जाता है। तत्पश्चात् वृक्ष की परिक्रमा व पूजा की जाती है और साथ ही 'कंडी रामचन्द्र जी वंडी' (अर्थात् यह शमी वृक्ष जो शक्ति का प्रतीक है इसके पत्तों का वितरण प्रभु करते हैं) का पाठ किया जाता है। शमी वृक्ष के पत्ते मित्रों व सगे-सम्बन्धियों में वितरित करने के पीछे मान्यता है कि हर एक सदस्य में अग्नि जैसा तेज व शक्ति का प्रवाह हो। जिससे वह जीवन में निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर रहे। श्री गणेश, प्रभु राम, ग्रहों व कलश की पूजा के उपरांत ब्राह्मण देवता गूंधी हुई मिट्टी की गोली बनाकर उपस्थित प्रत्येक स्त्री पुरुष को आशीर्वाद स्वरूप देते हैं। लोक प्रचलित मान्यता के अनुसार यह गीली मिट्टी की गोली लंका का स्वर्ण समझकर धन भंडार के साथ तिजोरी में रखी जाती है। जिससे धन सम्पदा में वृद्धि हो।

सिंधी दीपावली का पर्व कार्तिक माह में कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन सायंकाल या रात्रि में लक्ष्मी माता की पूजा करके हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। लक्ष्मी माता की पूजा सामग्री में कच्चा दूध, सिन्दूर, खील, मिठाई, मूली का पत्ता तथा सिंध का विशेष परवल सदृश खटमिट्ठा तीखा फल 'चिभिड़ या 'मितेरा' तथा इन्हीं के साथ कच्चे दूध व सिन्दूर में भीगे चाँदी के सिक्के को सोलह बार अपने दांतों से स्पर्श करना होता है, जिसका अर्थ हिन्दू धर्म की जीवन पद्धति में मनुष्य के जन्म से मरण तक सोलह संस्कारों की मान्यता से लगाया जाता है।

दांतों में सोलह बार सिक्के का स्पर्श कराना सोलह संस्कारों का प्रतीक है माना गया है। रात्रि में पुरुष वर्ग ज्वार के डंठल के एक छोर को कपड़ा बांधकर तेल में भिंगोकर जलाते हैं और कहते जाते हैं-डियारीअ जो डियो, डिठो, नढो, वडो, चिभिड़ मिठो अर्थात् सिर्फ दीपावली के दिन में उत्पन्न होने वाले छोटे बड़े सभी मितरे मीठे होते हैं। ज्वार के डंठल में बंधे कपड़े की लौ से ही आतिशबाजी को जलाते हैं जो एक प्रकार का सुरक्षित साधन बन जाता है। आज के दिन रात्रि भोजन में सात मौसमी सब्जियों का मिश्रण जिसे सिंधी में चिटो कुनो' अर्थात् स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ कहते हैं का सेवन किया जाता है। इसके पीछे लोक मान्यता है कि कुटुम्ब सदा सर्वदा, सुख-समृद्धि का भोग करे और उनका जीवन आनन्दमय हो। सिंधी परिवारों में दीपावली के पर्व पर बालक-बालिकाओं की सहभागिता व उनका उत्साह तो देखते ही बनता है। आज के शुभ दिन पर बच्चे लक्ष्मी माँ का वेश धारण कर घर-घर में जाते हैं। जिस भी परिवार में ये बच्चे चले जाते हैं वह परिवार इनके दर्शन पाकर अपने को धन्य मानता है और इन बच्चों को साक्षात् देवी का रूप मानकर इनकी पूजा करता है, वन्दना करता है एवं वरदानस्वरूप सुख-समृद्धि का आशीर्वाद प्राप्त करता है। दीपावली के ठीक पश्चात् मनाए जाने वाले पर्व अन्नकूट व भैया दूज उत्तर भारत की ही भांति सिंधी समाज में भी प्रचलित है।

ekrHkk"kk] ek= Hkk"kk ugh gkrh

भाषा बोध

प्रो० चन्दन कुमार
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
सुप्रसिद्ध साहित्यकार, आलोचक एवं
भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता
सदस्य-केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड,
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क
मो. 9312278999

21 फरवरी को अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाया जाता है। यूनेस्को, संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुषांगिक संगठन है। यह भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि के संरक्षण संवर्धन की दिशा में काम करता है। इसी संगठन ने नवम्बर 1999 में भाषाई जागरूकता की दिशा में विश्व को अभिप्रेरित करने के लिए 'अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' के आयोजन करने की घोषणा की। ''अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस (International Mother Language Day) प्रति वर्ष 21 फरवरी को मनाया जाता है। 17 नवम्बर, 1999 को यूनेस्को ने इसे स्वीकृति प्रदान की। इस दिवस को मनाने का उद्देश्य यह है कि ''विश्व में भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता व बहुभाषिकता को बढ़ावा मिले।'' 21 फरवरी 2000 को प्रथम अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाया गया। आज 21 वर्ष बीत गए। इसके पीछे दृष्टि यह है कि दुनिया में भाषाओं का जीवन बचा रहे और जीवन में भाषाएँ बची रहें। आपको ज्ञात होगी ढाका विश्वविद्यालय की घटना। तब बांग्लादेश नहीं था, पाकिस्तान था, वह पूर्वी पाकिस्तान था। पूर्वी पाकिस्तान की बहुसंख्यक आबादी बांग्ला बोलने वाले लोगों की थी और अभी भी है। सत्ता पश्चिमी पाकिस्तान में थी। इस्लामाबाद राजनीतिक रूप से उर्दू बोलता था। सांस्कृतिक रूप से पंजाबी, सिन्धी, बलूची और पश्तो बोलता था। उर्दू राजनीतिक सत्ता को पूर्वी पाकिस्तान का बांग्ला होना नहीं सुहाता था, तब का पूर्वी पाकिस्तान और अब बांग्लादेश 1905 से पहले का बंगाल था। बंगाली संस्कृति, रवीन्द्र नाथ टैगोर, गीतांजली, 'आनन्द मठ' उस ढाका के सांस्कृतिक राग थे। 'आमार सोनार बांग्ला' का भाव था। 'छाजा बाजा केस, एइ-बांग्लादेश' की धुन थी।

यह धुन कायद-ए-आजम जिनका नाम मोहम्मद अली जिन्ना था, जो काठियावाड़ी थे। काठियावाड़ सौराष्ट्र को कहा जाता था। जिनके दादा जी का नाम प्रेमजी भाई मेघजी ठक्कर था। ये काठियावाड़ के पनेली गाँव के रहने वाले थे। जिन्ना के दादा मछली का कारोबार करने के लिए मुसलमान हो गए। एक पुस्तक है अकबर एस. अहमद की। पुस्तक का नाम है 'जिन्ना पाकिस्तान एंड इस्लामिक आइडेंटीटी'। मुझे एक क्षेत्र प्रचारक महोदय ने दिया था। बड़े रोचक निष्कर्ष हैं इस पुस्तक में। पुस्तक के लेखक अकबर सलाउद्दीन अहमद ने पांथिक मान्यता, भाषा चेतना और राष्ट्र के प्रश्नों पर अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया है। उनको पढ़ना, यह जानने के लिए जरूरी है कि पांथिक मान्यताएँ भाषाई चेतना का पर्याय नहीं होती। इस्लाम के नाम पर पाकिस्तान बन गया और भाषा के नाम पर पाकिस्तान टूट गया। 1952 में ढाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और भाषा संबंधी कार्यकर्ताओं ने उर्दू के वर्चस्व के विरोध में बांग्ला के अस्तित्व को बचाने के लिए प्रदर्शन किया, पश्चिमी पाकिस्तान की पुलिस से झड़प हुई। 21 फरवरी 1952 में ढाका यूनिवर्सिटी के स्टूडेंट्स और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने तत्कालीन पाकिस्तान सरकार की भाषा नीति का विरोध किया। उनका प्रदर्शन अपनी मातृभाषा के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए था। प्रदर्शनकारियों की मांग बांग्ला भाषा को आधिकारिक दर्जा देने की थी। पाकिस्तान की पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर गोलियां बरसाई लेकिन विरोध नहीं रुका और अंत में सरकार को बांग्ला भाषा को आधिकारिक दर्जा देना पड़ा। तब ख्वाजा नाजीमुद्दीन प्रधानमंत्री थे। गोली चली, सोलह लोग मारे गए। यह तथ्य सिद्ध करता है कि मात्र भाषा नहीं होती-'मातृभाषा'।

''यूनेस्को द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की घोषणा से बांग्लादेश के भाषा आन्दोलन दिवस को अन्तरराष्ट्रीय स्वीकृति मिली, जो बांग्लादेश में सन् 1952 से मनाया जाता रहा है। बाग्लादेश में इस दिन राष्ट्रीय अवकाश होता है। इन्हीं भाषा शहीदों के याद में 17 नवम्बर 1999 को यूनेस्को ने अन्तरराष्ट्रीय

मातृभाषा दिवस घोषित किया। सलाम, बरकत, रफीक, जब्बार, सफीउर, इकबाल साहब के 'मुस्लिम हैं, हम वतन हैं' के खांचे में फिट नहीं बैठ पाए। धीरेन्द्र नाथ दत्त ने पाकिस्तान के कांस्टीट्टुएंट असेंबली संविधान सभा में 23 फरवरी 1948 को बोलते हुए कहा 'ठीक है, पांथिक मान्यता के आधार पर देश बन गया पर भाषा प्रश्न इससे बड़ा है। बांग्ला चलेगी।' वे 1905 में बंग-भंग विरोधियों में भी रहे वे। आज उनको याद करना प्रासंगिक है। भाषाई प्रश्न पर अपनी दृष्टि के कारण पाकिस्तानी पांथिक शासकों को वे चुभते थे। बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में जब शेख मुजीब-उल-रहमान गिरफ्तार हुए, उसके तीन बाद ही धीरेन्द्र नाथ दत्त को पाकिस्तान पुलिस ने उनके बेटे दिलीप कुमार दत्त के साथ गिरफ्तार कर लिया और यातना देकर मार डाला। बांग्लादेश के इतिहास मे स्वतंत्रता सेनानी श्री धीरेन्द्र नाथ दत्त शहीद के विशेषण से याद किए जाते हैं। अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की इस पृष्ठभूमि को भाषा के प्रश्न को लेकर पांथिक प्रश्न, राजनीतिक टुकड़खोरी के प्रश्न, फूलमालाओं और गुलदस्तों के प्रश्न से अलग करके व्याख्यायित करने के लिए उल्लेख कर रहा हूँ। धीरेन्द्र नाथ दत्त अविभाजित पाकिस्तान में कल्याण मंत्री थे। देश का विभाजन इस्लाम के नाम पर हुआ। एक क्षण के लिए इस्लाम बर्दाश्त कर लिया पर उर्दू बर्दाश्त नहीं की। जिसको आचार्य रामविलास शर्मा जी ने हिन्दी नवजागरण कहा वह अनिवार्यतः स्वभाषा के बोध के साथ आती है। रामविलास शर्मा जी कहते हैं कि "भाषा की उत्पत्ति का विवेचन भी मानव समाज के उद्भव और विकास के प्रसंग में ही संभव है। यदि आप मानते हैं कि मनुष्य का सृजन किसी आध्यात्मिक शक्ति ने किया है, तो संभवतः आपको यह भी विश्वास होगा कि भाषा की रचना ईश्वर ने की है। "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने घोषणा की कि 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को शूल।' यह वाक्य हिंदी में आधुनिकता का बोध बनाता है। बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, केशवराम भट्ट से लेकर छायावाद और छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य का बोध भाषाई चेतना से सम्पन्न स्वतंत्रता और आधुनिकता का बोध है। ध्यान देने योग्य है कि इस भूमि की भाषाई चेतना आत्ममुग्धता की नहीं रही है। अपितु सांस्कृतिक और बौद्धिक आत्मावलोकन के भाव से भी प्रेरित रही है। भारतेन्दु का बलिया वाला भाषण इस का प्रमाण है। बलिया (उ.प्र.) में कार्तिक पूर्णिमा को ददरी मेला लगता है। 1884 की कार्तिक पूर्णिमा को भारतेन्दु ने यहाँ एक भाषण दिया था, यह पढ़ना चाहिए। गंगा और घाघरा के मिलन स्थल पर स्थित पूर्वांचल के ददरी गाँव में दिया गया भारतेन्दु का यह भाषण 19 वीं-20 वीं सदी की भारतीय भाषाई और सांस्कृतिक समझ का घोषणा पत्र है। "भारत की उन्नति कैसे हो सकती है?" इसका शीर्षक है। रामविलास शर्मा जी ने किस्टोफेर किंग ने और फ्रेंसिसिका आरसिनी ने इस भाषण के बहाने से भारत की भाषाई और सांस्कृतिक समझ को लेकर बहुत लिखा है। पढ़ना चाहिए। तत्कालीन बलिया के अंग्रेज कलेक्टर डी.टी रोबट्र्स के सामने यह भाषण दिया गया था। इस भाषण के अंत में भारतेन्दु आवाहन करते हैं "भाइयों! अब तो नींद से चौकों अपने देश की सब प्रकार की उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताबें पढ़ों, वैसे ही खेल खेलो, वैसे ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेसी भाषा पर भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।" ताकत के सामने अपनी बात को कहने का साहस बहुत कम लोगों में होता है, यह साहस भारतेन्दु में था । भारतेन्दु का यह भाषण बताता है कि परिस्थितियाँ कठिन हो सकती हैं किन्तु स्वाधीन चेतना का मतलब है-निज भाषा और निजदेश के हितों के पक्ष में बात करना। अधिकांश लोगों की प्रगति में मातृभाषा की बड़ी भूमिका रही है। मातृभाषा के प्रश्न सांस्कृतिक सम्प्रेषण के भी प्रश्न हैं। हैदराबाद में अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन के उद्घाटन सत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पांचवें सरसंघचालक पूज्य कुप्पाहल्ली सीतारमैया सुदर्शन (के.एस.सुदर्शन) जी ने उद्बोधन दिया था, तब वे संघ के सहसरकार्यवाह के दायित्व में थे। भाषाई सम्प्रेषण पर उन्होंने एक उदाहरण दिया। उन्होंने कहा "अगर आप कहें कि राधा ने कृष्ण की बाँसुरी चुराए लियो। जो व्यक्ति राधा को जानता है, कृष्ण को जानता है, वृन्दावन को जानता है, मथुरा को जानता है, ब्रज को जानता है, वो समझेगा यह हंसी-ठिठोली का मामला है। इश्क का मामला है, लाड़ का मामला है। बाँसुरी मिल जाएगी। पर इसे यदि अंग्रेजी में किसी फिरंगी से कहे कि राधा हैज स्टोलेन द फ्लुट् आफ कृष्णा तो उत्तर आएगा 'सो ह्वाट् ! गो द पुलिस स्टेशन एण्ड लॉज द एफआईआर।' इस प्रसंग में भाषा बदल गई तो इश्क और लाड़ चोरी में बदल गया। पूर्वोत्तर के अनेक वनवासी समुदायों की भाषा पांथिक आँधी में विलुप्त हो गयी, उनकी सांस्कृतिक मान्यताएँ भी नष्ट हो गयीं। फिर 'न खुदा मिला न विसाल-ए-सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे।' पूर्वांचल के कई वनवासी समुदायों का जीवन भाषाई लोप के साथ सांस्कृतिक लोप को प्राप्त हुआ। दुनिया में हिब्रू है तो इजरायल भी है। सौभाग्य है कि 2020 में आई हुई राष्ट्रीय शिक्षा नीति मातृभाषा के प्रश्न पर गंभीर है। मातृभाषा सिर्फ कविता, कहानी और गप्प की भाषा न रहे अपितु ज्ञान की भाषा बने, अभियांत्रिकी की भी भाषा बने, चिकित्सा विज्ञान की भाषा बने, यह शिक्षा नीति इस तथ्य की ओर भी संकेत है। हिन्दी के नाम पर मलाई खा रहे संस्थानों को यह शिक्षा नीति बदलेगी। निरे गप्प ज्ञान कहने का जो झूठ विश्वविद्यालयों और संस्थानों के तंत्र में समा गया है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उसे आइना दिखा पाए यही कामना है।

vk/k in'k % ,d fogxkoykdu

विहंगावलोकन

डॉ० ओरुगंटि सीताराममूर्ति
पूर्व प्रधानाचार्य,
रेडियो वार्ताकार
भारतीय विद्या केन्द्रम् एवं
विद्या भारती आंध्र के
कार्यसमिति सदस्य
विचारक व प्रतिष्ठित लेखक
सलाहकार - सूचना प्रसारण मंत्रालय

संपर्क
मो. 96186 41932

भारत एक अखंड भूखंड है। इसका वर्णन हमें पुराणों से मिलता है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तत् भारतम् नाम भारती यत्र संततिः।।

अर्थात् समुद्र के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में जो देश स्थित है, वह भारत देश है, यहाँ की संतान भारतीय हैं। समस्त भारतीयों की संस्कृति एक है। यह एक सांस्कृतिक एकता युग युगों से अक्षुण्ण रही है । भारतीय संस्कृति की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने कहा कि ‘‘भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में महान् हैं क्यों कि यहाँ की सामाजिक संस्कृति में अधिक से अधिक संस्कृतियाँ समा गई हैं।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत में आंध्रप्रदेश का योगदान उल्लेखनीय है। ‘आंध्र’ शब्द का प्रारम्भिक विवरण ऐतरेय ब्राह्मण में लगभग ईस्वी पूर्व 2000 में मिलती है। इसमें उल्लेख है कि आंध्र मूल रूप से आर्यजाति के थे और उत्तर भारत में रहते थे। वहाँ से वे विंध्य पर्वतों को पार कर दक्षिण तक चले गए और कालांतर में वहाँ के लोगों से घुलमिल गये। इतिहासकारों के अनुसार आंध्रप्रदेश का नियमित इतिहास ईसा के अनेक वर्षों पूर्व से मिलता है। महाभारत के सभापर्व में 31-71 में आंध्रों का उल्लेख मिलता है। पाण्ड्यांच द्रविडांश्चैव सहिंतांश्च केरलैः आंध्रस्ताल वनांश्चैव कलिंगानुष्ट्र कर्णिकान’’ वन पर्व 51, 22 में भी आंध्रों का उल्लेख है। सवगंगान् सपौंड्रानूश्चोलद्रविड़ आंध्रवान’। विष्णु -पुराण के 4, 24, 64 श्लोकों में आंध्र देश का इस प्रकार उल्लेख है। कोसलान्ध्रपाण्डुताम्रलिप्त समुद्रतट पुरीं च देव रक्षितो रक्षितः। ऋग्वेद की कथा के अनुसार ऋषि विश्वामित्र के शाप से उनके 50 पुत्र आंध, पुलिंद, शबर हो गये। सम्राट अशोक के शिलालेख 13 में भी आंध्रों को मगध साम्राज्य के अंतर्गत बताया गया है। ईसा पूर्व 240 के लगभग आंध्रों ने दक्षिण में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था धीरे-धीरे वे भारत प्रायद्वीप भर में विस्तृत हो गया। इन्होंने विजातीय क्षत्रपों को हराकर गोदावरी, मालवा, कठियावाड़ और गुजरात तक अपनी सत्ता का विस्तार और विकास किया।

आंध्र के नरेशों में गौतमी पुत्र शातकर्णी बहुत प्रसिद्ध था जो ई. पू. 119 के लगभग राज करता था। आंध्र राज्य की प्रभुसत्ता ई. 225 के लगभग तक रही। उस काल में दक्षिण भारत के समुद्र तट पर अनेक बड़े बंदरगाह थे जिनके द्वारा रोम साम्राज्य से भारत का व्यापार चलता था। आंध्र के शासक का आंतरिक शासन प्रबंध भी बहुत सुव्यवस्थित और लोकतंत्रीय सिद्धांतों पर आधारित था, जिसका प्रमाण इस देश के अनेक अभिलेखों से मिलता है। पूर्वी चालुक्य और काकतीयों ने भी राज्य किया। विजय नगर के साम्राज्य का कार्यकाल इस प्रदेश का स्वर्ण युग माना जाता है। यह प्रदेश वेंगी नाम से भी ज्ञात है। वेंगी का अर्थ है कृष्णा व गोदावरी नदियों का मध्य देश। तेलुगू शब्द का मूल रूप-त्रिलिंग से है। ब्रह्मांड पुराण के वर्णनों से हमें विदित होता है कि आंध्र प्रदेश में तीन प्रसिद्ध शिवलिंग हैं- श्रीशैलम्, श्रीकाल हस्ति तथा द्रक्षाराम। इस मध्य का भूभाग त्रिलिंग कहलाता है। माना जाता है कि त्रिलिंग से ही तेलगु बना।

17 वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने देश के कई भागों को अपने शासन के अन्तर्गत ले लिया और दक्षिण मे मद्रास प्रांत की स्थापना की। स्वतंत्रता के पश्चात् तेलुगू भाषी क्षेत्र को मद्रास से अलग करके 1 अक्टूबर 1953 को नए प्रदेश का निर्माण किया गया जिस का नाम आंध्र प्रदेश रखा गया। राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अनुसार हैदराबाद राज्य को आंध प्रदेश में मिलाकर 1 नवम्बर 1956 को आंध्र प्रदेश बना। बाद में अनेक स्थानीय राजनीतिक कारणों से तेलंगाना को आंध्र प्रांत से अलग करने की माँग जोर पकड़ने लगी तथा इसके परिणामस्वरूप जून 2014 को आंधप्रदेश दो राज्यों में तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के रूप में विभाजित हो गया।

वर्तमान में आंध्र प्रदेश की राजधानी अमरावती है।

वर्तमान में आंध्र प्रदेश के दो मुख्य भाग हैं तटवर्ती आंध्र व रायल सीमा, क्षेत्र के अनुसार यह भारत का चौथा सबसे बड़ा राज्य है। इस राज्य का समुद्र तट 972 किलोमीटर है। इस प्रदेश में अब 13 जिले हैं। विशाखापट्नम् बड़ा शहर है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 4,93,86,799 है। साक्षरता 67.41 प्रतिशत। आंध्र की सीमा पश्चिम व उत्तर में तेलंगाना, छतीसगढ़ पूर्व व उत्तर में उड़ीसा, पूरब में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण पश्चिम में कर्नाटक से लगती है।

जलवायु : आमतौर पर आंध्र प्रदेश की जलवायु अच्छी है। राज्य की जलवायु का निर्धारण करने में दक्षिण पश्चिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सर्दी का समय यहाँ सुखद है। ग्रीष्मकाल में आमतौर पर तापमान 20 से 40 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है।

कृषि : आंध्र प्रदेश का मुख्य व्यवसाय कृषि व मछलीपालन है। मुख्य फसल है चावल व यहाँ के लोगों का मुख्य आहार चावल ही है। यहाँ की अन्य फसलें हैं ज्वार, तम्बाकू, कपास और गन्ना। आंध्र प्रदेश भारत का सबसे अधिक मूंगफली उत्पादन करने वाला राज्य है। राज्य के क्षेत्रफल के 23 प्रतिशत हिस्से में सघन वन है। वन उत्पादों में सागवान, यूकिलिप्ट्सि, काजू और इमारती लकड़ी मुख्य है।

साहित्य एवं संस्कृति : भारत की अन्य भाषाओं की तुलना में तेलुगू एक मधुर भाषा है। यह भाषा पुरातन शैली और मधुर प्रवाह के लिए विख्यात है। इसलिए कहा जाता है कि 'देश भाषा लंदु तेलगु लेस्सा' अर्थात् भारतीय भाषाओं में तेलुगू का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

साहित्य के क्षेत्र मे रामायण, महाभारत, श्रीमद्‌भागवद्‌ आदि महान पौराणिक ग्रंथों का अनुवाद करके भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का प्रयास इस प्रांत के साहित्यकारों ने किया। कवित्रय नाम से प्रसिद्ध नन्नयूया, तिक्कन्ना, येर्राप्रगडा ने महाभारत को तेलुगू में अनुवाद करके तेलुगू साहित्य को समृद्ध किया। कवियित्रि मोल्ला ने रामायण को, बम्मेर पोतना ने श्रीमद्‌भागवतम् का तेलुगू में अनुवाद किया। विजय नगर के सम्राट श्रीकृष्णदेव राय के कार्यकाल में तेलुगू साहित्य का स्र्वणयुग माना जाता है। उनके दरबार में अष्टदिग्गज नाम से आठ कवि व अनेक प्रकांड विद्वान रहते थे। उनमें से अल्लसानि पेद्दन्ना, तेनालि रामलिंगम प्रमुख है। आंध्र के भोज नाम से प्रसिद्ध श्रीकृष्णदेव राय स्वयं एक सुविख्यात कवि थे। उन्होंने आमुक्त माल्यदा नामक ग्रंथ की रचना की। साहित्यिक विधाओं में प्रसिद्ध सतसाहित्य परम्परा में वेमन्ना, मारन्ना प्रसिद्ध हैं। 19 वीं-20वीं सदी के साहित्यकारों में गद्यतिक्कन्ना नाम से प्रसिद्ध कंदुकूरि वीरेशलिंगम् का योगदान उल्लेखनीय है। अन्य प्रसिद्ध साहित्यकारों में गुरजाड, अप्पाराव, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम्, पानुगंटि लक्ष्मीनारायण प्रमुख हैं। नाटक रचना में तिरुपति वेंकट कवुलु से विरचित पांडवोद्योग विजयम (कुरुक्षेत्र) अत्यंत प्रसिद्ध है।

आंध्र प्रदेश के विभिन्न जिलों में लोककला के अनेकानेक रूप प्रचलित हैं। इस प्रांत में लगभग 150 लोककला के रूप विद्यमान हैं। लोककला के रूपों में अधिकांश आध्यात्मिक भाव प्रदान करने वाले हैं यद्यपि कुछ हास्य-विनोद के निमित्त बने हुए रूप में भी मौजूद हैं। राग, ताल युक्त ढंग से होने वाले कथा-कथन को कथा-गान कहते हैं। कथा-गानों में हरिकथा, बुर्रकथा, ओग्गुकथा, कोम्मुकथा, जमकुल कथा आदि प्रमुख हैं। कूचिपूडी राज्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य रूप है।

यहाँ के लोकनृत्य उल्लास प्रधान है। कोलाटमु, जडकोलाटमु, चेक्का भजन, चिरुतला भजन, गरगला नृत्यम्, वीरनाट्यम्, तप्पेडगुल्लू, डपपुल नृत्यम्, जलारी नृत्यम् आदि प्रमुख हैं। तेलगु लोक नाटकों में संगीत, नृत्य आदि कलाओं के साथ लोक जीवन भी व्यक्त होता है। लोकनाटक प्रमुख रूप से वीथि भागवतम्, यानादि भागवतम्, चेंचु नाटकम, तुर्पु भागवतम्, चिरूतल रामायणम् आदि इनमें प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कोया, गोण्डु, घिसा, सवारा, लंबाडी जैसे आदिवासी नृत्य भी लोकप्रिय हैं। इन सभी की कथावस्तु रामायण, महाभारत, श्रीमद्‌भागवतम् से संबंधित रहती है।

संगीत : राज्य के पास संगीत की बहुमूल्य विरासत है। कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति त्यागराज, अन्नमाचार्य, क्षेत्रय्या के साथ-साथ भद्राचल रामदास भी तेलुगू प्रांत के हैं। आधुनिक युग में मंगलंपल्लि बाल मुरलीकृष्ण, मैंडलिन श्रीनिवास आदि प्रमुख संगीतकारों में हैं।

धर्म : कई सुविख्यात हिन्दू संत आंध्र प्रदेश से हैं। द्वैताद्वैत सिद्धांत के संस्थापक, निंबारकाचार्य, पोतुलूरि वीर ब्रह्मेन्द्र स्वामी जी, सत्य साईंबाबा आदि।

तीर्थ स्थान व धार्मिक स्थल : सम्पूर्ण भारत में तिरुपति में स्थित बालाजी वेंकटेश्वर मंदिर एक बहुत महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। अन्नवरम् में सत्यनारायण स्वामी मंदिर, विजयवाड़ा में कनकदूर्गा मंदिर, पौराणिक प्रसिद्ध सिंहाचल में वाराह नरसिंह स्वामी मंदिर, श्रीकालहस्ती ज्योर्तिलिंग में से एक प्रसिद्ध शिवलिंग क्षेत्र श्रीशैलम्, भद्राचलम् में राममंदिर, अहोबिलम् स्थित नरसिंह मंदिर, पंचाराम अरसवल्ली में सूर्य मंदिर, श्रीकाकुलम में श्रीकूर्मम् आदि दर्शनीय तीर्थ स्थल हैं।

त्योहार : आंध्र प्रदेश त्यौहारों का प्रदेश है, श्रीराम नवमी, व्यासपूर्णिमा, श्रावण में वरलक्ष्मी पूजा, भाद्रपद में गणेशचतुर्थी, आश्विन में विजयादशमी, अट्ल तद्दी, दीपावली, कार्तिक मे शिव आराधना, पौष में मकर संक्रान्ति, माघ में महाशिवरात्रि।

खानपान : यहाँ चावल प्रधान भोजन है। इसका प्रयोग विविध तरीकों से किया जाता है। आंध्रप्रदेश के व्यंजन, सभी भारतीय व्यंजन में ज्यादा मसालेदार रूप में विख्यात हैं। अल्पाहार में इडली, सांबार, पेसरट्टू, डौसा, उपमा प्रसिद्ध है।

Mk Hkhejko vEcMdj % ,d egkekuo

विमर्श

प्रो० भरतराम कुम्हार

अध्यक्ष, विद्या भारती राजस्थान
पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड
सुप्रसिद्ध चिंतक,
विचारक, सामाजिक शैक्षिक,
विधि विषयों पर अनेक
लेखों का प्रकाशन

संपर्क
मो. 9414025659

आधुनिक भारत के निर्माण में अनेक मनीषियों का सर्वाधिक योगदान रहा है, उनमें से एक बाबा साहेब डॉ.भीमराव अम्बेडकर प्रमुख हैं। वह एक श्रेष्ठ चिंतक थे। वे अच्छे लेखक और वक्ता भी थे लेकिन उनके बारे में अनेक भ्रम फैलाए गए। किसी ने उन्हें हिन्दू विरोधी कहा तो किसी ने ब्राह्मण विरोधी। उन्हें मात्र दलितों का मसीहा कहकर एक छोटे से दायरे में बाँध दिया गया। वे किसी वर्ग विशेष के नेता नहीं थे और न ही किसी वर्ग के विरोधी। वे सम्पूर्ण भारतवर्ष के एवं सारे समाज के पथ के प्रदर्शक थे। वे अपने आप को हिन्दू समाज का सुधारक कहते थे। उन्होंने कहा कि मैं सारे हिन्दू समाज को समरस बनाने के लिए संघर्ष करता रहूँगा। राष्ट्र व समाज जीवन के हर क्षेत्र में के बारे में उन्होंने विचार व्यक्त किए। उन्होंने अपने विचार अनेक पुस्तक, भाषण, पत्र, पत्रिकाओं में व्यक्त किए। उन्होंने सब कुछ अँग्रेजी में लिखा जिसे अधिकतर लोग समझ नहीं पाए एवं राजनीतिज्ञों ने उन्हें अपने तरीके से प्रचारित किया।

डॉ.अम्बेडकर ने कहा था ''मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दुओं का सामाजिक इतिहास अत्यंत पवित्र रहा है। कुछ धर्म के दुराग्रही लोगों ने हिन्दुओं को काफी क्षति पहुँचाई है। उन्होंने हिन्दू धर्म को सँवारा नहीं, बिगाड़ा है।''

डॉ.अम्बेडकर ने जिस हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख किया वह विश्व की प्राचीनतम समाज व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था यहाँ प्राचीन समय से ही है। यह वर्णवाद या जातिवाद के रूप में नहीं बल्कि कार्य के अनुसार व्यवस्था में थी। वर्ण व्यवस्था का अर्थ कार्य का विभाजन था। शूद्र का अर्थ अछूत या नीच कदापि नहीं था।

डॉ.अम्बेडकर ने कहा हिन्दुओं में छुआछूत नहीं थी। कोई किसी के छूने से भी नीचा या अपवित्र हो जाए, ऐसा हिन्दू समाज में नहीं था। यह पहली बार सन् 705 में तब हुआ जब मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध के राजा दाहिर सेन एवं उनके पुत्र को युद्ध में मारकर महलों की तरफ बढ़ा और महलों में बैठी रानियों एवं महिलाओं ने कहा, यदि ये आक्रान्ता यवन हमें छू लेंगे तो हम अपवित्र हो जाएँगी।

वैदिक काल में शुद्र का अर्थ श्रमजीवी अर्थात् जो शारीरिक परिश्रम से अपनी आजीविका कमाए। छुआछूत और भेदभाव कभी भी हिन्दु धर्म का भाग नहीं था। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं वसुधैव कुटुम्बकम्' की कामना करने वाला सम्पूर्ण विश्व को एकात्मता का साक्षात्कार कराने वाला धर्म अपने ही बन्धुओं का तिरस्कार कैसे कर सकता था। जातियों में कभी आपसी विरोध रहा नहीं। डॉ. अम्बेडकर ने 25-11-1949 को संविधान निर्मात्री समिति सभा में अपने अंतिम भाषण में कहा कि 'जातियों में आपसी विरोध के कारण देश का पतन नहीं हुआ।' उन्होंने कहा कि 'पृथ्वीराज चौहान को हराने के लिए मोहम्मद गोरी का सहयोग पृथ्वीराज की जाति के जयचन्द ने किया। महाराणा प्रताप के विरूद्ध उनकी ही जाति के मानसिंह लड़े। शिवाजी के विरुद्ध शिवाजी की ही जाति के लोगों ने औरंगजेब का सहयोग किया। हिन्दुओं में कभी भी आपसी जातीय आधार पर संघर्ष या युद्ध नहीं हुए।' परन्तु यह व्यवस्था जातिवाद में परिवर्तित होकर अभिशाप बन गई। यह सब कुछ पिछले 2000 वर्ष में विदेशी आक्रान्ताओं की देन है। इन आक्रान्ताओं ने यह भ्रम फैलाया कि जातिभेद और छूआछूत हिन्दू धर्म का भाग है। साम, दाम, दण्ड, भेद, अनाचार, अत्याचार से हिन्दुओं के मन में यह भाव भर दिया कि छूआछूत रखना हिन्दू धर्म का हिस्सा है। वह इस विकृति को हिन्दुओं के आचरण में व व्यवहार में धर्म के नाम पर विकृत मानसिकता को थोपने में सफल हुए। यह बुराई इस हद तक पहुँच गई कि कुछ जातियों के लोगों को छूना या उनकी

छाया पड़ने को भी पाप समझा गया। कुछ तथाकथित लोगों ने भ्रम फैलाया कि वे पानी के स्रोतों को छूएँगें तो अशुद्ध हो जाएगा जिससे उनको दूर से ही देखकर लोग अलग रास्ता अपनाने लगे। छूआछूत इस सीमा तक बढ़ गई थी कि 12 से 36 कदम तक की दूरी रखी जाने लगी। तथाकथित अछूतों से वस्तुओं के उपयोग में भेदभाव रहा। अनेक वर्षों तक अन्याय हुए। गरीबी के कारण वस्त्रों में अंतर, खानपान में अंतर, अलंकारों में अंतर, निवास स्थानों में विभेद, सार्वजनिक स्थानों पर भेद-चहुओर दिखा।

डॉ.अम्बेडकर एक विद्वान् राष्ट्रभक्त थे। जब वे महाराजा गायकवाड़ के सैनिक सेक्रेट्री थे तब तथा गवर्नमेंट लॉ कॉलेज मुम्बई के प्राचार्य के कार्यकाल में उनके कमरे में बाहर से ही चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी फाइल रख कर चला आता था। तालाब से पानी लेने तक सत्याग्रह करना पड़ा। वे उच्च शिक्षा प्राप्त थे। तीन-तीन विषयों में डॉक्टरेट थे। उनके साथ ज्यादती होने के बावजूद भी उन्होंने इसके प्रतिकार के लिए प्रतिशोध का मार्ग नहीं अपनाया। बल्कि उन्होंने समाज सुधारक की भूमिका अपनाई। उन्होंने राष्ट्र एवं हिन्दू धर्म को आधार बनाकर ही दलित समाज के उत्थान का कार्य किया।

उनकी मूल कल्पना थी कि हिन्दू समाज एकरस होकर समानता के आधार पर चले। 1924 में उन्होंने मुम्बई में आयोजित बहिष्कृत हितकारिणी सभा में कहा कि 'अस्पृश्यों का उद्धार केवल अस्पृश्यों के बलबूते नहीं हो सकता, अपितु सम्पूर्ण समाज को साथ लेकर आगे बढ़ना होगा।'

हिन्दू समाज में उत्पन्न हुई अस्पृश्यता की इस विकृति का प्रतिकार अनेक धर्माचार्यों एवं अन्य महापुरुषों ने किया। संतज्ञानेश्वर, एकनाथ, बसवेश्वर, नारायणगुरु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महात्माफुले, गांधी जी आदि ने छुआछूत का विरोध किया। इस समस्या का अँग्रेजों के काल में ठीक निदान हो इस सोच पर दो महापुरुषों ने कार्यरूप दिया।

डॉ.केशव बलिराम हेडगेवार जिन्होंने हिन्दु समाज को समरस बनाने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना कर हिन्दुओं में छूआछूत व जाति-पाति को समाज की विकृति मानकर उनके निराकरण के लिए शाखा पद्धति अपनाई। दूसरे महापुरुष थे डॉ.अम्बेडकर उन्होंने समता, बन्धुता और न्याय के लिए भारतीय समाज रचना में ही बौद्ध पद्धति को अपनाया।

डॉ.अम्बेडकर संघ के कार्यपद्धति से प्रभावित थे। डॉ.हेडगेवार जी के कार्य पद्धति यानि भोजन करते समय सब एक साथ एक पक्ति में बैठते थे। इससे संघ के प्रति उनके विचार इस प्रकार बने।

1. संघ एवं डॉ.अम्बेडकर का लक्ष्य समान था- हिन्दू समाज को समरस बनाना।
2. डॉ.अम्बेडकर 1935 में पुणे के संघ शिविर में आए तो उन्होंने पाया कि यहाँ तो भेदभाव एवं अस्पृश्यता नहीं है। संघ के कार्यपद्धति को सही माना पर यह भी कहा कि सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी है।
3. 1939 में पूणे के संघ शिक्षा वर्ग में बाबा साहेब आए, 525 संभागी पूर्ण गणवेश में थे। उन्होंने पूछा कि इनमें कौन अछूत है तो किसी ने हाथ खड़ा नहीं किया। डॉ.अम्बेडकर ने कहा संघ में अछूतों को स्थान नहीं है? वहाँ उपस्थित संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं ने कहा कि यहाँ किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं होता। आप जाति का नाम लेकर पूछें। डॉ.अम्बेडकर ने पूछा ''इसमें कितने चमार, महार व मेहतर हैं तब लगभग 100 हाथ उठे। डॉ.अम्बेडकर ने उनसे पूछा कि आप लोगों ने अछूतों के नाम पर हाथ क्यों नहीं खड़े किए? सभी ने कहा हमारे साथ अछूत सा व्यवहार नहीं होता। हम सब एक साथ खेलते हैं, एक साथ एक पंक्ति में सबके साथ बैठकर भोजन करते हैं। भोजन भी हम अपने हाथों से सबको परोसते हैं अतः अछूत हैं ही नहीं।

गांधी जी कि हत्या का झूठा आरोप संघ पर लगाकर प्रतिबंध लगा तब डॉ.बाबा साहेब अम्बेडकर ने सरदार पटेल से संघ की प्रशंसा की एवं श्यामा प्रसाद मुखर्जी के प्रयासों से प्रतिबंध हटा क्योंकि संघ इस प्रकार के घिनौने कृत्य में शामिल नहीं था।

डॉ.अम्बेडकर उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण देशभक्त और प्रखर विचारक थे। यदि वे चाहते तो देश के बाहर विदेश में अच्छी नौकरी कर आराम से जीवनयापन कर सकते थे। उन्होंने अपना, समाज एवं राष्ट्रीयता के खतरे यानि जाति-पाँति विभेद को समझ कर उसे दूर करने के लिए व तत्कालीन परिस्थिति को बदलने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। 25-11-1949 को संविधान सभा में कहा ''मुझे भारत के बार-बार परतंत्र होने की अत्यंत पीड़ा है। यदि राष्ट्र को उच्चासन तक पहुँचाना है तो जातीय द्वेष को मिटाना होगा, तभी राष्ट्र संबल होगा।''

1937 में गांधी जी ने कहा था कि 'जिस देश के सार्वजनिक स्थानों से मुझे और मेरे भाईयों को पानी नहीं पीने दिया जाता उसे अपना देश कैसे कहूँ, फिर भी यह देश मेरा है। मेरा शरीर इसी मिट्टी से बना है, इसी देश की मिट्टी में अपने प्राण को त्यागूँगा।'

भाषावार राज्यों के निर्माण का विरोध परमपूज्य श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर उपाख्य (श्रीगुरु) ने एवं डॉ.अम्बेडकर ने भी किया था।

डॉ.अम्बेडकर ने संविधान में धारा 370 का विरोध किया। उन्होंने राष्ट्रध्वज भगवा ध्वज को अपनाने का प्रस्ताव रखा। पी.टी.आई. के एक संवाददाता ने उनसे पूछा 'क्या संस्कृत राष्ट्रभाषा हो सकती है। उन्होंने कहा क्यों नहीं।' उन्होंने कहा ईसाई व इस्लाम मत को अपनाने

वाला राष्ट्रविरोधी हो जाता है। उन्होंने तिब्बत चीन को देने के लिए नेहरु जी की आलोचना की।

भारतीय संविधान में उन्होंने 22 चित्रों का समावेश किया, जिनमें राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, विक्रमादित्य आदि के चित्र हैं यह उनके राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

हिन्दुओं के प्रति उनका विक्षोह उतना नहीं था जितना बताया जाता है। उन्होंने 1936 में मुम्बई विधान सभा में गांधी जी से कहा था आप हमें हरिजन मत नाम दीजिए। यह नाम दलितों एवं शेष हिन्दुओं में भेद उत्पन्न कर देगा। आप हमें कोई हिन्दू नाम और दीजिए भले ही हमें प्रोटेस्टेंट हिन्दू नाम दें परन्तु हरिजन नाम न दें। उन्होंने 1931 में गांधी जी से कहा था कि मैं दलितों को हिन्दुओं से अलग राजनैतिक अधिकार देने के विरुद्ध हूँ। यह तो आत्मघात करना होगा क्योंकि अछूत हिन्दुओं के ही अंग है। अपने शरीर से किसी अंग को कैसे अलग किया जा सकता है।

जहाँ एक ओर हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, शैव, वैष्णव इत्यादि में भेद उत्पन्न किया जा रहा था वहीं डॉ.अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल में इन सभी को हिन्दु धर्म के ही पंथ मानकर कानूनी रूप से एक मनवाया। यही आगे चलकर कानून में भी हिन्दू की परिभाषा बन गई।

विभाजन के समय पाकिस्तान से दलितों को भारत आमंत्रित किया। भारत ने नेहरु से उन्हें सहायता देने की माँग की। हॉलांकि नेहरू जी ने सहायता नहीं की बल्कि संघ ने सहायता की। उन्होंने दलितों को इस्लाम के बदले बौद्ध बनने का आह्वान किया। वे छूआछूत के व्यवहार से अत्यंत खिन्न थे, इसलिए उन्होंने यह भी घोषणा कर दी थी कि मैं एक हिन्दू के रूप नहीं मरूँगा। हमारे साथ कुछ होता है तो हम दुखी होते हैं, उनके साथ अति होने के कारण उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। मुस्लिमों का उस समय राष्ट्र से अलगाव वाली परिस्थिति, राष्ट्र के प्रति प्रेम न होने के कारण और उनका मज़हब अहिंसा को नहीं मानने वाला तथा अन्यपंथो के प्रति कट्टर होना आदि से मुसलमान बनना स्वीकारा नहीं। उनका कहना था कि मैं ईसाई भी नहीं बनूँगा क्यों कि उनकी हमदर्दी केवल दिखावा है। उन्होंने 1956 में जब बौद्धमत को ग्रहण किया तब कहा कि मैं हिन्दू धर्म को तनिक भी नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा। बौद्धमत हिन्दू धर्म के अति निकट का मत है। हैदराबाद के नवाब ने उन्हें प्रलोभन देकर मुसलमान बनने को कहा लेकिन उन्होंने माना कि मुसलमान हमारा हितैषी नहीं होंगे। उनका प्रयास केवल सत्ता प्राप्त करना है और मैं यह अनुभव से कहता हूँ।

साम्यवादी आर्थिक आधार पर देश बनाना चाहते हैं जबकि डॉ .अम्बेडकर बन्धुत्व एवं परस्पर सहयोग पर समाज की संरचना चाहते थे। वे साम्यवाद के घोर विरोधी थे। 1953 में दत्तोपंत ठेंगड़ी से कहा कम्यूनिज़्म बड़े खतरनाक तरीके से बढ़ रहा है। दलित समाज भी इनके प्रभाव में आ सकता है। दलित समाज साम्यवादियों का लक्ष्य बन सकता है। अतः मैं अपने जीवन में ही इन्हें कोई दिशा देना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि अनुसूचित जातियों एवं कम्यूनिष्टों के बीच अम्बेडकर व सवर्ण हिन्दुओं एवं कम्यूनिष्टों के बीच गोलवलकर जी अवरोध हैं।

क्या आप ब्राह्मण विरोधी हैं? उन्होंने कहा कि कैसे हो सकता हूँ। मैं तो जो कुछ भी वह ब्राह्मणों के कारण ही हूँ। मेरा ब्राह्मण जाति से कोई झगड़ा नहीं है। भेदभाव की दृष्टि रखने वाले गैर-ब्राह्मणों से अभेद होने दृष्टि रखने वाला ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय हैं। वे अपने एक ब्राह्मण शिक्षक जिसका का नाम अम्बेडकर था उनके नाम के आधार ही डॉ.भीमराव ने अपने नाम के साथ अम्बेडकर जोड़ लिया।

मुसलमानों के बारे में डॉ.अम्बेडकर ने 1941 में 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' नाम से पुस्तक लिखी जिसका दूसरा संस्करण 1945 में 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इण्डिया' नाम से छपा। उन्होंने इस पुस्तक में लिखा कि यदि मुसलमान भारत में रहते हैं तो देश में सम्प्रदायिक वैमनस्य रहेगा। देश में अशान्ति रहेगी, इनका भाईचारा किसी के साथ नहीं होता। वे जहाँ भी रहते हैं वहाँ अशान्ति रखते हैं। यह बात भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में दृष्टिगोचर हो रहा है। भारत की सुरक्षा संकट में रहेगी चाहे आंतरिक हो या बाह्य। यदि वे सेना में भी रहेंगे तो, यदि मुस्लिम देश भारत पर आक्रमण कर दिया तो ये विद्रोह कर उनका सहयोग करेंगे, देश परतंत्र हो सकता है। डॉ.अम्बेडकर की यह बात 1948 में सत्य हो गई जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। राजा हरि सिंह हिन्दू थे। उनकी सेना में मुसलमान थे जिन्होंने विद्रोह कर पाकिस्तानी सेना का साथ दिया परिणामतः वर्तमान में पाकिस्तान के पास आज भी भारत का कुछ हिस्सा है।

डॉ.अम्बेडकर ने कहा कि 'भारत की प्रतिरक्षा, भावी सुरक्षा तथा साम्प्रदायिक सुरक्षा के स्थायी समाधान हेतु दोनों देशों के मध्य जनसंख्या की पूर्ण अदलाबदली आवश्यक प्रतीत होती है अन्यथा भारत एशिया का रोगी देश बन जाएगा। वे कहते थे कि इनकी निष्ठा भारत के साथ नहीं बल्कि मुस्लिम देशों से जुड़ी रहती है। ये इस्लाम को देश से भी श्रेष्ठ मानते हैं। ये देश के प्रति सच्चे नहीं हैं। इनमें कट्टरवाद है। विभाजन के समय पाकिस्तानी दलितों को मुसलमान न बनने का आह्वान किया।

दलितों का सामाजिक सुधार चाहते थे। दलितों को अधिकार दिलाने हेतु उन्होंने अनेक आन्दोलन किए। 1924 में बहिष्कृत हित कारिणी सभा बनाई। उन्होंने सारे प्रयास दलितों को हिन्दू समाज का अभिन्न अंग मानकर बनाए रखने के लिए ही किए। उनका कहना था-1924 में मुम्बई में आयोजित बहिष्कृत हितकारिणी सभा में कहा था कि अस्पृश्यों का उद्धार केवल अस्पृश्यों के बलबूते पर ही नहीं होगा, अपितु पूरे समाज को साथ लेकर ही होगा। अस्पृश्यता की समस्या का समाधान भावनात्मक धरातल पर सम्बन्धों के विकास से ही होगा। डॉ .अम्बेडकर ने दलितों में स्वाभिमान व आत्मविश्वास की ज्योति जलाई

तो सवर्णों का भी आह्वान किया कि वे झूठे दम्भ को छोड़कर दलितों के साथ समता का व्यवहार करें। उन्होंने कहा कि मुझे किसी जाति से द्वेष नहीं है। मैं सामाजिक भलाई और समता के लिए लड़ रहा हूँ। श्री सी. बी. खैरमौडे ने डॉ. अम्बेडकर की जीवनी लिखी जिसमें डॉ अम्बेडकर के शब्दों में 'मुझमें और सावरकर में न केवल सहमति है बल्कि सहयोग भी है कि हिन्दू समाज को एकजूट और संगठित किया जावे और हिन्दू धर्म को अन्य मजहबों के आक्रमणों से आत्मरक्षा के लिए तैयार किया जावे'।

1936 में डॉ. अम्बेडकर ने गांधी को स्पष्ट शब्दों में लिखा था 'हिन्दू समाज को ऐसे धार्मिक आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए जो स्वतंत्रता, समानता और भातृभाव के सिद्धांतों को मान्यता दे।' इस कथन से स्पष्ट है कि अम्बेडकर हिन्दू समाज में सुधार के समर्थक थे, हिन्दू विरोधी नहीं।

उन्होंने दलितों से कहा 'स्वच्छता से रहना चाहिए, अपने बच्चों को स्वच्छ रखो। बच्चों को शिक्षा दिलवाओ, नशे का प्रयोग नहीं करना चाहिए। स्वावलम्बी बनो, संगठित हो और संघर्ष करो, स्वर्णों को दोष मत दो। स्वयं को शिक्षित करो।'

11 जनवरी 1950 को मुम्बई में अपना सम्मान किए जाने के अवसर पर उन्होंने कहा-'अब तक हम शत्रुता के आधार पर राजनीति करते रहे। मुझे लगता है कि अबतक अस्पृश्य वर्ग के सभी नेता संकुचित दृष्टिकोण से देखते रहे और कुछ मात्रा में यह दोष मुझमें भी थी। लेकिन अब हमें अपनी सोच बदलनी है। हमें अपने वर्ग की चिन्ता के साथ देश की स्वतंत्रता की रक्षा की चिंता भी करनी है। हमारा देश कई बार स्वतंत्र और कई बार परतंत्र होता रहा। हमें विदेशियों की गुलामी करनी पड़ी। स्वाधीनता की जितनी जरूरत सवर्णों को हैं उतनी ही दलित वर्ग को भी। अतः देश पुनः पराधीन हुआ तो वह हम सभी के लिए दुर्भाग्य होगा। देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना सभी को अपना परम कर्तव्य मानना चाहिए। हमें पुरानी शत्रुता भुलानी होगी, पहले जैसा एकाकीपन काम नहीं देगा।'

14 अप्रैल 1941 को बाबा साहेब के 50 वें जन्म दिन पर शुभकामनाएँ देते हुए स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर ने लिखा था 'अम्बेडकर अपने व्यक्तित्व, विद्वता, संगठन एवं नेतृत्व कुशलता से देश में एक आधारभूत महापुरुष गिने जा सकेंगे। अस्पृश्यता उन्मूलन एवं अस्पृश्य बन्धुओं में साहस, आत्मविश्वास और चेतना जगाने का जो महान् कार्य उन्होंने किया है उससे भारत की अमूल्य सेवा हुई है। यह उनका देशभक्तिपूर्ण कार्य है।'

संविधान निर्मात्री सभा में जब संविधान लेखन पर कार्य प्रारम्भ हुआ तब गांधी जी नेहरू के पास गए जहाँ सरदार पटेल भी थे। महात्मा गांधी ने पूछा कि क्या अपने संविधान को लिखने वाला कोई व्यक्ति तय कर लिया है। पंडित नेहरू जी ने कहा कि हमने जर्मनी के ज्योरजेरी, जो संविधान के बड़े विद्वान हैं, उनका सोचा है। गांधी जी ने कहा कि डॉ. अम्बेडकर इस कार्य के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति हो सकते हैं। पटेल ने भी गांधी जी का समर्थन कर दिया और डॉ. अम्बेडकर संविधान को लिखने की प्रारूप समिति के अध्यक्ष हो गए। उन्होंने अत्यंत कठिन कार्य को कुशलता से पूर्णकर अपनी विद्वत्ता की श्रेष्ठता सिद्ध की। इस हेतु ही डॉ. अम्बेडकर को संविधान निर्माता कहा जाता है। वे संविधान निर्मात्री सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने। भारतीय आवश्कताओं के अनुरूप संविधान बनाना चाहते थे , जिसमें 22 महापुरुषों के चित्र रखे, 370 धारा न हो, भगवाध्वज राष्ट्रध्वज हो, संस्कृत राष्ट्रभाषा हो इत्यादि संविधान में चाहते थे। परन्तु ये सभी कार्य वे नहीं करवा सके अतः 2 सितम्बर 1953 को डॉ. अम्बेडकर ने संसद् में तत्कालीन गृहमंत्री श्री कैलाशचन्द्र काटजू से कहा-

"Sir my filenab tell me that I have made the contitution. But I am Quite prepared to say that I shall be the first person to burn it."

इस टिप्पणी का कारण भी उन्होंने बताया -

People always keep on saying to me, oh! You are maker of the contitution. My answer is, I was hack, I did what I was asked, I did much against my will.

उन्होंने जिन जीवन मूल्यों को संजोया था वे राष्ट्र के पुननिर्माण में अति आवश्यक है। समरस, संगठित, शक्तिशाली समाज ही राष्ट्र का वैभव स्थापित कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने यही किया, अतः इस कार्य के लिए राष्ट्र उनका ऋणी है।

सम्पूर्ण हिन्दू समाज उनकी विरासत पाने का अधिकारी है। ऐसे विश्वमानव को जाति या वर्ग के संकुचित दायरे में बंद करना सर्वथा अनुचित है। डॉ. अम्बेडकर को एक वर्ग का हितैषी और दूसरे वर्ग के विरोधी के रूप में निरुपित करना गलत है। Sectional Leader वे नहीं थे।

डॉ. अम्बेडकर ने जितने भी कानूनों के निर्माण में योगदान दिया उसके पीछे एक दृष्टि यह थी कि राष्ट्र का हित सर्वोपरि है, उसकी उन्नति एवं अखंडता तथा शक्तिशाली होना आवश्यक है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज के समरस होने से ही यह सम्भव था। वे अच्छे समाज सुधारक, अच्छे श्रमिक नेता, एक श्रेष्ठ बैरिस्टर हीं नहीं बल्कि कुशल राजनीतिज्ञ थे। कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, कुशल वक्ता, अच्छे अर्थशास्त्री, अच्छे एन्थ्रोपोलिजिस्ट, उन्होंने सामाजिक विषयों पर कई सिद्धांत दिए। वे अनेक देशों के संविधानों के ज्ञाता, भारत के संविधान के निर्माता हैं। उनके जीवन के अनेक आयाम हैं। उन्हें नमन् ।

स्पंदन

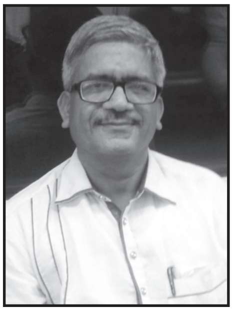

श्री गोपाल महेश्वरी

कार्यकारी सम्पादक, ‘देवपुत्र’
अनेक बाल साहित्याधारित
पुस्तकों के लेखक, कवि,
‘प्राचीन भारतीय वांङ्मय में पर्यावरण
चेतना एवं वर्तमान चिंताओं के
समाधान’ पर शोध प्रबंध,
बाल साहित्यकार सम्मान प्राप्त

संपर्क

मो. 7898395810

गूँजे भारत माँ की जय

नवयुग की नव गति नव लय हम,
साध रहे होकर निर्भय।
मुक्तकंठ से दसों-दिशा में,
गूँजे भारत माँ की जय।।

स्वतंत्रता का अमृत उत्सव,
जन गण मन का पर्व महान्।
याद आ रहे वीर सभी वे,
हुए देशहित जो बलिदान।।
उनका कृतज्ञ वंदन करने का,
महापर्व है यह निश्चय।।
मुक्तकंठ से दसों-दिशा में,
गूँजे भारत माँ की जय।।

बड़ी विकट थी कालरात्रि वह,
पराधीनता लदी हुई।
कितने कष्ट सहे माता ने,
युग समान वे सदी गईं।।
पंद्रह अगस्त सन् सैंतालिस,
स्वातंत्र्य सूर्य था पुनः उदय।।
मुक्तकंठ से दसों-दिशा में,
गूँजे भारत माँ की जय।।

सजग सपूत समर्थ बनें हम,
कभी सूर्य यह अस्त न हो।
अमृत पुत्रों के रहते फिर
भारत माता त्रस्त न हो।।
यह स्वातंत्र्य फले और फूले
सदा रहे अमृत अक्षय।।
मुक्तकंठ से दसों-दिशा में
गूँजे भारत माँ की जय।।

—•—

u, ;|x&xku xk,|

राष्ट्र के, सपने सभी, अपने नयन में हम बसाएँ।
स्वातंत्र्य का अमृत महोत्सव, है नए युग-गान गाएँ।।

राष्ट्र जो सदियों से अपना, विश्व का सिरमौर ही था।
जो सकल जीवनकला की, प्रथम चेतन भोर ही था।
कुछ सदी छाया पड़ी, परतंत्रता के भास वाली।
शौर्य का सूरज उगा, बीती निशा वह त्रास वाली।
स्वातंत्र्य के अमृत पलों में उठें, जागें, जग जगाएँ।।
स्वातंत्र्य का अमृत महोत्सव, है नए युग-गान गाएँ।।

भूलें नहीं इतिहास की वह, वेदना, संघर्ष गाथा।
परतंत्रता की बेड़ियों से, मुक्त कैसे हुई माता।
प्राप्त यह स्वातंत्र्य वेला, अनगिनत बलिदान देकर।
कुंकुम नहीं शोणित से पूजित, प्राण देकर प्राण लेकर ।
मूल्य प्राणों से बड़ा इसका, इसे अमृत पिलाएँ।।
स्वातंत्र्य का अमृत महोत्सव, है नए युग-गान गाएँ ।।

अध्यात्म और संसार की, विद्याओं में हम फिर प्रगत हों।
विश्व में आलोक भरते, हम अनवरत सूर्य रथ हों।।
विज्ञान बन रथचक्र घूमे, ज्ञान वल्गा से नियंत्रित।
कर्मरथ की सारथी शिक्षा हो, संस्कृति से सुमंत्रित ।
पूर्वजों की भाँति नापें, जगत् की सारी दिशाएँ।।
स्वातंत्र्य का अमृत महोत्सव, है नए युग-गान गाएँ।।

– गोपाल महेश्वरी

'kkld ugha lk/kd

अनुभव

श्री केशव कुमार शर्मा
पूर्व प्रधानाचार्य
भाऊराव सरस्वती विद्या मंदिर
व.मा. विद्यालय, नोएडा,
पूर्व प्रशिक्षण प्रमुख,
विद्या भारती प.उ.प्रदेश क्षेत्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य के समग्र विकास की कल्पना यह भारतीय चिन्तन का मूलभूत आधार है, अर्थात् मनुष्य का विकास हर क्षेत्र में हो। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, प्राणिक, नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से तो विकसित होना ही चाहिए साथ ही व्यवहार में भी कुशलता की आवश्यकता है।

बालक की प्रथम गुरु माँ होती है तथा प्रथम पाठशाला घर होता है। जिसमें बालक बिना किसी दबाव, कष्ट अथवा परेशानी के सहज भाव से माता के मुख से सुन-सुनकर हर प्रकार का पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्ध व दायित्त्वबोध सीख लेता है। 3-4 वर्ष का बालक माता-पिता के कहने पर दौड़-दौड़ कर काम करने लगता है। घर में खुशी के अवसर पर प्रसन्न होना तथा दुःखद प्रसंग होने पर परिवार जनों को रोते देखकर रोना या दुखी होना स्वतः ही करता है, कोई ऐसा करने के लिए नहीं कहता। क्या खाना या क्या नहीं खाना, क्या पहनना या क्या नहीं पहनना इसका ज्ञान भी माँ ही करा देती है। आश्चर्य इस बात का है शिशुओं को इस प्रकार सिखाने के लिए इस तरह अनौपचारिक शिक्षा देने का प्रशिक्षण भी किसी माँ को नहीं दिया जाता।

जैसे ही बालक 3-4 वर्ष की उम्र में विद्यालय में प्रवेश लेता है वैसे ही समस्याएँ शुरु होती हैं। जैसे स्कूल न जाना, स्कूल में शान्त न रहना, एकाग्रचित्त न बैठना, सो जाना, बार-बार रोना, अध्यापक के द्वारा बार-बार बताने के बावजूद भी न सीखना, कॉपी-किताब के पेज फाड़ना आदि। जबकि इनको पढ़ाने व सिखाने के लिए तो प्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्त किया जाता है फिर समस्याएँ क्यों आती है?

मुझे लगता है अध्यापक अपनी भूमिका से भटक जाते हैं या भूमिका को भूल जाते हैं और बच्चों के शासक बन जाते हैं। अध्यापक की भूमिका मात्र सही मार्गदर्शन देना ही नही, बल्कि सिखाने के आकर्षक विविध तरीकों से भी बालकों को आनन्दानुभूति कराना है। नई शिक्षा नीति केवल शिक्षक आधारित क्रिया-कलापों का समर्थन नहीं करती बल्कि बालक केन्द्रित, क्रिया आधारित व्यवस्था का समर्थन करती है। सीखने का गुण तो हर एक जीव में जन्मजात है। चिड़िया अपना घोंसला बनाती है, खरगोश जमीन में रहने के लिए मांद बनाते हैं। इस प्रकार का प्रशिक्षण कौन देता है? तो उत्तर मिलेगा कोई नहीं। फिर कैसे सीखते हैं ? आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। प्यास लगने पर बालक स्वयं ही पानी लेकर पीना सीख जाते हैं, भूख लगने पर खाद्य पदार्थ खाना है, यह भी सीख जाते हैं परन्तु कुछ बातें अनुभव से सीखते हैं अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं। देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर और स्पर्श करके। इस अनुभव लेने को उपयुक्त शब्द देकर बच्चों को अवगत कराना, यह काम अध्यापक कराते हैं। जैसे अच्छे-बुरे दृश्य में अन्तर, मधुर व कर्कश ध्वनि में अन्तर, सुगंध व दुर्गंध में अन्तर, स्वादिष्ट और अस्वादिष्ट में अन्तर तथा स्पर्श में अलग-अलग अनुभूति में अन्तर परन्तु यह क्रियाधारित और बालकों को आनन्द देने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए।

शैशवावस्था/बाल्यावस्था मनुष्य के जीवन में नींव की तरह है। नींव जितनी मजबूत होगी उतनी ही मजबूत उस नींव पर बना भवन होगा। अतः जितने मजबूत संस्कार और खेल-खेल में काम करके सीखने की आदत बचपन में पड़ जाती है उतनी ही अच्छी संस्कारों से युक्त, श्रमनिष्ठा, दायित्त्वबोध व आदर्श नागरिक बनने की इच्छाशक्ति जीवन का लक्ष्य बन जाते हैं और जीवन सुन्दर बन जाता है।

हम जानते हैं कि बालकों में अलग-अलग क्षेत्रों में असीम क्षमताएँ विद्यमान होती हैं और प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत क्षमता, रुचि और स्वभाव अलग-अलग होता है। अध्यापक को

प्रत्येक विद्यार्थी को एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में स्वीकार करना होगा, उसकी क्षमता और अभिव्यक्ति के अनुसार छोटे-छोटे काम सौंप कर दायित्त्वबोध, कर्तव्यबोध और खोजी प्रवृत्ति को जागृत करना होगा।

इस कार्य में निःसन्देह माता-पिता का भी सहयोग चाहिए। जब बालक पहली बार विद्यालय में आता है तो अपना बैग, कॉपी, किताब, पेन्सिल, रबड़, लंचबॉक्स, पानी की बोतल साथ लेकर आता है। माता-पिता सिखाते है 'ध्यान से जाना, वहाँ अपने सब सामान का ध्यान रखना, घर आते समय सब सामान लेकर आना, कोई भी सामान खोना नहीं' सहज रूप से दायित्त्वबोध करा दिया। कॉपी, किताबों, पेन्सिल, रबड़, बैग का प्रयोग कब करना, कितना करना, कैसे करना यह माता-पिता नहीं बताते, कर्त्तव्यबोध भी नहीं कराते परिणामस्वरूप बच्चा दूसरों को देखकर कॉपी के पेज फाड़कर हवाई जहाज बनाकर उड़ाने लगता है। खेल-खेल में पेन्सिल को पूरे दिन छीलकर खत्म कर देता है। किताबों-कॉपियों की जिल्द फाड़ देता है। महीने-दो महीने में दोनों ओर से शिकायत शुरू हो जाती है कि बालक पढ़ता नहीं, कॉपी-किताब फाड़ता है, शैतानी करता है, पूरे दिन खेलता है, कक्षा कार्य नहीं करता, गृहकार्य नहीं करता, कहना नहीं मानता आदि।

परन्तु बच्चों को इस शब्दावली का शायद अर्थ भी मालूम नहीं होता कि शैतानी, कक्षाकार्य, गृहकार्य, कहना मानना या न मानना, पेज फाड़ना, कॉपी-किताब गन्दी करना आदि ये गलत कार्य हैं। माता-पिता सोचते हैं कि आचार्य बताएँगे और आचार्य को 30-40 बच्चों में हर एक पर व्यक्तिगत ध्यान देने की आदत ही नहीं होती अर्थात् नींव कमजोर रह जाती है।

माता-पिता व आचार्य भी छोटे बच्चों की बुद्धि को कम आँकते है। बच्चे खेल-खेल में छोटे-छोटे काम आसानी से करके स्वावलम्बी बन सकते है उन्हें नहीं करने देते हैं। कहीं-कहीं सम्पन्न घरों में तो एक गिलास पानी के लिए भी नौकर को दौड़ाया जाता है। छोटे -छोटे काम स्वयं करके सीखे इसका अवसर न अभिभावक देते है और न ही आचार्यगण। कभी-कभी पेन्सिल आदि छीलने का प्रयास भी करता है तो उसे डाँट पड़ती है कि सारी पेन्सिल छील दी। तब नींव कैसे मजबूत होगी, आत्मविश्वास कैसे बढ़ेगा। इतना ही नहीं समस्या सामने आने पर निदान की जड़ तक भी नहीं जाना चाहते। जैसे जख्म होने पर यदि पट्टी पर खून दिखाई दे तो पट्टी को धोते हैं परन्तु रिसाव तो जख्म से हो रहा है जिसे सही करना चाहिए परन्तु ऐसा होता नहीं दिखता।

मैं दो उदाहरण देना चाहूँगा- मैं अपने ही शहर के एक अन्य विद्यालय में प्रधानाचार्य कक्ष में बैठा था। कुछ बातें हो रहीं थी तभी एक अध्यापिका बड़े ही गुस्से में कक्षा एक के बच्चे का हाथ पकड़ कर लायी और प्रधानाचार्य से कहने लगी कि ये बच्चा कक्षा में भद्दी गाली दे रहा था, बहुत ही नालायक है और बदतमीज भी है। मैने जब पूछा कि क्या कहा तो इसने फिर वही गाली ज्यों कि त्यों दोहरा दी। मैने अध्यापिका से कौतूहलवश पूछ लिया कि फिर आपने क्या किया? अध्यापिका ने तुरंत ही उत्तर दिया महाशय एक चाँटा मारा और यहाँ ले आई कि इसका नाम काट कर भगा दूँ। इसमें सुधार होना मुश्किल है।

मैंने शिक्षिका से कहा कि इससे गाली का मतलब पूछिये और ये गाली घर में कौन- कौन बोलता है, यह भी जानकारी लेकर बताइये। शिक्षिका थोड़ी देर बाद अकेली आयी और कहने लगी इसे गाली का मतलब पता नहीं है और इसके पिताजी इसकी माँ को रोज गालियाँ देते है जो इसने सीख ली है। मैंने शिक्षिका से पूछा अब बताइए नालायक और बदतमीज कौन है? बच्चा या पिता, सुधार की आवश्यकता बच्चे को है या पिता को? शिक्षिका ने उत्तर दिया 'पिता की आदतों में सुधार करवाने आवश्यकता है' और बच्चे को प्यार से वापस कक्षा में ले गई।।

एक और घटना मैं और विद्या भारती के वरिष्ठ कार्यकर्ता एक परिवार में बैठे थे। परिवार में एक 4 वर्ष की बच्ची बार-बार हमारे आस-पास घूम रही थी। कार्यकर्ता ने बच्ची को प्यार से अपने पास बुलाया और अनौपचारिक बातें करने लगे। बातों-बातों में अधिकारी ने पूछ लिया कि बेटी बड़ी होकर क्या बनोगी। बच्ची ने तपाक से उत्तर दिया ''मै बड़ी होकर मैडम बनूँगी, साड़ी पहनूँगी और मैं डंडी लेकर सब बच्चों की पिटाई करूँगी।''

प्रथम द्रष्ट्या तो बात हँसी की लगी परन्तु बच्ची के जाने के बाद हम दोनों ने ही बच्ची की बात को गम्भीरता से लिया और विचार किया कि ये बात तो किसी भी स्तर पर, किसी ने भी नहीं पढ़ाई होगी। बच्ची रोज देखती है कि मैडम घर से साड़ी पहनकर आती है और शासक की तरह बच्चों को आदेश देती है। आदेश का शत-प्रतिशत पालन न होने पर डंडी से बच्चों को मारती है या सजा देती है। अतः बच्ची ने देखकर ही सीख लिया। उसे किसी ने सिखाया नहीं।

मेरे विचार में शिक्षक जो पढ़ाते है या सिखाते है बालक केवल उतना ही नहीं सीखते। जरूरी नहीं है जो जिस ढंग से शिक्षक सिखाना या पढ़ाना चाहते है बालक-बालिकाएँ सीख ही ले। वास्तव में वे तो जो देखते है, जो सुनते है, जो उसे कराया जाता है या जो जाने-अनजाने में करते देखते हैं वो सब बातें सीखते हैं। अतः हम वास्तव में जो भी सिखाना-पढ़ाना चाहते है उसके लिए स्वस्थ और आदर्श वातावरण निर्माण कराने का काम अध्यापक का है। उस वातावरण में बालक जो भी सीखेगा, वह वही होगा जो हम लक्ष्य लेकर चलें है। हमें उसके लिए शासक नहीं साधक बनना चाहिए।

बालकों को क्रिया-कलापों द्वारा मनोवैज्ञानिक ढंग से सिखाने की आवश्यकता है तभी उनकी सीखने की नींव मजबूत होगी और आदर्श विद्यार्थी के रूप में विकसित होकर भविष्य का आदर्श नागरिक रूपी मजबूत भवन के रूप में हम उसे देख सकेंगे।

शिक्षकों को बहाने छोड़ने होंगे यथा बालक/बालिकाएँ अमुक

अमुक विषय में कमजोर हैं, पढ़ते नहीं हैं, सुनते ही नहीं हैं, शैतानी करते हैं, कक्षा में ध्यान नहीं देते हैं, बदतमीज हैं, लड़ाई-झगड़े करते हैं, याद नहीं करते हैं आदि-आदि। शिक्षक को इन सब समस्याओं की जड़ में जाना होगा तभी तो समस्या का कारण पता लगेगा और उसे आसानी से दूर भी किया जा सकता है।

मैने प्रारम्भ में ही कहा था कि मनुष्य के विकास की, उन्नति की कोई सीमा नहीं है, वह अपने ही द्वारा बनाये कीर्तिमानों को नये रूप में गढ़ता रहता है। मैने एक पुस्तक पढ़ी थी 'युगे -युगे क्रान्ति' जिसमें पिता के पुराने विचारों को बताकर उनका बेटा रीति-रिवाजों के किसी बन्धन को तोड़कर नयी पहल शुरु करके एक क्रान्तिकारी कदम सिद्ध करता है और यह श्रृंखला अगली कई पीढ़ी तक चलती है।

अर्थात् जो आज है उसके स्वरूप में नित नूतन परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह बात शिक्षक को भी स्वीकार करनी होगी। जिस छोटी आयु वर्ग के बच्चों को अध्यापक पढ़ाना प्रारम्भ करते हैं, अध्यापक की वही आयु 15-20 वर्ष पहले रही होगी। अध्यापक उसी तरीके, उसी वातावरण को लाने का प्रयास करता है, जो 15-20 वर्ष पहले उन्होंने स्वयं सीखे थे। परन्तु इन 15-20 वर्षो में दुनियाँ में बहुत कुछ बदल जाता है, और यह अन्तर अध्यापक के जीवन में सदैव ही रहता है। यदि अध्यापक स्वयं को समय के साथ अद्यतन नहीं करते, और फिर शासक बनकर आदेश के पालन करवाने का प्रयास करते हैं। बालको और उनके समस्याओं का उनसे सामना कर उसे निराकरण का प्रयास करना चाहिए। विवेकानन्द जी की मान्यता है- ''शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास का साधन है।''

इस मान्यता को ध्यान में रखते हुए आज के अध्यापक को चाहिए बालकेन्द्रित क्रिया आधारित और बाल मनोविज्ञान को देखते हुए सीखने का स्वस्थ वातावरण तैयार करें। यही अध्यापक की सच्ची साधना होगी।

(श्री केशव कुमार शर्मा जी के अनेक लेख विद्या भारती प्रदीपिका के पूर्व के अंकों में प्रकाशित हुए हैं। यह उनका अंतिम लेख है। कोरोना से लंबा संघर्ष कर उनका देवलोकगमन हुआ। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि !)

आचार्य को शिक्षण कला में निपुण व आचरणसिद्ध होना चाहिए

आचार्य को अपने विषय का केवल विद्वान् होने से कार्य पूर्ण नहीं होता, उसमें विषय को विद्यार्थियों के बीच रखने, उन्हें समझाने की कुशलता एवं निपुणता भी होना आवश्यक है। उसका विषय प्रस्तुतिकरण का ढंग आकर्षक होना चाहिए। इससे पूरी कक्षा तत्काल एकाग्र होकर और आकृष्ट होकर उसमें मनोयोग से समझने के लिए तत्पर हो जाए। कक्षा में सजीवता लाने के लिए उसे अनेक प्रकार के वाच्य विधान, दृश्य विधान, कथा-कहानी तथा चुटकुले, चित्र आदि का प्रर्याप्त भण्डार अपने पास कक्षा-कक्षा में उपयोग हेतु रखना चाहिए। छोटे, स्पष्ट, सुबोध, सुगठित, संगत और उपयुक्त प्रश्नों के माध्यम से विद्यार्थियों को नवीन ज्ञान देने के लिए और उनकी अभिव्यंजना शक्ति को विकसित करने के लिए प्रयास करना चाहिए। छात्रों से शुद्ध, सार्थक, संगत, आवश्यक प्रासंगिक और उचित उत्तर निकलवाकर, अशुद्ध उत्तरों का परिष्कार करते रहना चाहिए। आचार्य को एक कुशल संगठक एवं संयोजक भी होना चाहिए तभी वह विद्यालय के विकास में विद्यार्थियों हेतु सहगामी क्रियाकलापों के आयोजन की योजना सफलता पूर्वक कर सकता है और विद्यार्थियों में रुचि एवं उत्साह का संचार कर सकता है। बालक के विकास में इन सहपाठ्य क्रियाकलापों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य को शिक्षण कला में पूर्ण निपुण होना आवश्यक है, तभी वह अपनी यथायोग्य शक्ति का प्रयोग कर अपने कर्तव्य का सही ढंग से पालन करने में समर्थ होगा।

आचार्य पर नवीन पीढ़ी के जीवन के गठन का बहुत बड़ा दायित्व है। उसकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में ही विद्यार्थी ज्ञानार्जन करते हैं, अपने चरित्र का निर्माण करते हैं तथा देशभक्ति, समाज-प्रेम एवं संस्कृति के संस्कारों के माध्यम से अनेक ऐसे सद्गुणों का विकास करते हैं जो राष्ट्र-जीवन के लिए पोषक है। आचार्य अपने आचार-विचार से समाज को उचित दिशा एवं प्रेरणा प्रदान करते हैं। भारतीय इतिहास में समाज को नेतृत्व प्रदान करने वालों की परम्परा सदैव आचार्यों को ही रही है। सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज सदैव उनसे यह अपेक्षा करता है। अतएव आचार्य को अपने कार्य-व्यवहार का समय-समय स्वनिरीक्षण करते रहना चाहिए।

vk;ZHkV~V % izkphu Hkkjr ds [kxksy oSKkfud

गौरव

डॉ० ओउमप्रकाश शर्मा
विज्ञान विषय पर अनेक लेख विभिन्न
पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित
हिन्दी में विज्ञान लेखन हेतु प्रतिबद्ध
निदेशक, नवाचार केन्द्र
राष्ट्रीय दूरशिक्षा, इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

संपर्क
मो. 9868245626

विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही भारतीय ऋषि, मुनि और वैज्ञानिकों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। भारतीय वैज्ञानिकों की खोज धरोहर रूप में वर्तमान में भी विश्वभर के नये वैज्ञानिकों को प्रेरणा देती है। हमारे ऐसे ही एक महान प्रेरणा स्रोत वैज्ञानिक हैं- महान गणितज्ञ, ज्योतिषविद् तथा खगोलशास्त्री आर्यभट्ट।

आर्यभट्ट के माता-पिता व शिक्षा-दीक्षा तथा जन्म आदि के सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु उनके द्वारा लिखा ग्रंथ 'आर्यभट्टीय' के अनुसार उनका जन्म शक सम्वत् यानि 476 में हुआ था। एक मान्यता के अनुसार उनका जन्म बिहार के प्राचीन पाटलिपुत्र और आधुनिक पटना के समीप कुसुमपुर नामक स्थान पर हुआ था। माना जाता है कि लगभग 23 वर्ष की उम्र में उन्होंने आर्यभट्टीय ग्रंथ की रचना यहीं रह कर की थी। कुछ विद्वान् मानते हैं कि आर्यभट्ट का जन्म नर्मदा नदी और गोदावरी नदी के मध्य बसे अश्मक प्रांत वर्तमान में महाराष्ट्र में हुआ था और उसके बाद उच्च शिक्षा के लिए वे पाटलिपुत्र स्थित कुसुमपुर चले गए। यहीं पर उच्च शिक्षा का विश्वप्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय था। माना जाता है कि वे इस विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। यह भी माना जाता है कि वे गुप्तकाल के ज्योतिर्विद थे।

आर्यभट्ट ने गणित, खगोलिकी, ज्योतिष विज्ञान आदि क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए, जिनकी जानकारी उनके द्वारा लिखे ग्रंथों से मिलती है। इन ग्रंथों में आर्यभट्टीय, दशगीतिका तथा आर्यभट्ट सिद्धांत प्रसिद्ध है। इनमें से आर्यभट्टीय एक गणितीय रचना है जिसमें अंकगणित, बीजगणित व त्रिकोणमिति का विस्तृत वर्णन है। इनके अलावा आर्यभटीय में वर्गमूल, घनमूल, सतत भिन्न, द्विजातीय समीकरण, समांतर ज्याओं की तालिका तथा घात शृंखलाओं के योग आदि का विवरण दिया गया है। दरअसल उनके द्वारा किए गए कार्यों का विवरण मुख्यतः इसी ग्रंथ में मिलता है। माना जाता है कि इस ग्रंथ को यह नाम स्वयं आर्यभट्ट द्वारा नहीं दिया गया होगा। आर्यभट्टीय में मुख्यतः 108 छंद है इसलिए इसे कभी-कभी आर्य शतअष्ट के नाम से भी जाना जाता है। इसके अलावा इसमें 13 परिचयात्मक छंद हैं। इस तरह इसमें कुल 121 छंद हैं। यह ग्रंथ चार पदों अथवा अध्यायों में विभाजित है। ये अध्याय हैं-गीतिकपद 13 छंद, गणितपद 33 छंद, कालक्रियापद 25 छंद तथा गोलापद 50 छंद।

आर्यभट्ट का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है आर्यभट्ट सिद्धांत जिसमें मुख्यतः खगोलीय गणनाओं से सम्बंधित कार्य का विवरण है। अब यह ग्रंथ लुप्त हो चुका है। परन्तु इसके अवशेषों तथा आर्यभट्ट के समकालीन वाराहमिहिर की रचनाओं में तथा उनके बाद के गणितज्ञों के कार्यों तथा रचनाओं में आर्यभट्ट के सिद्धांतों की जानकारी मिलती है। उनमें आर्यभट्ट द्वारा अनेक खगोलीय उपकरणों का विवरण मिलता है। जैसे कि शंकु यंत्र, छाया यंत्र, बेलनाकार यस्ती यंत्र, छत्र यंत्र, जलघड़ी, कोणमापी उपकरण तथा धनुर यंत्र आदि उपकरण। आर्यभट्ट सिद्धांत में सूर्य सिद्धांत का प्रयोग किया गया है। यहाँ यह जानना अच्छा होगा कि सूर्य सिद्धांत में सूर्योदय की अपेक्षा अर्धरात्रि का उपयोग गणनाओं हेतु किया जाता है।

आज हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर घूमती है और इसी के कारण दिन-रात होते हैं। इस बात को एक सिद्धांत के रूप में मध्यकाल में निकोलस कापर्निकस नामक एक वैज्ञानिक ने पंद्रहवीं शताब्दी में प्रतिपादित किया था। परन्तु यहाँ यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि वास्तव में कापर्निकस से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ही भारतीय खगोलशास्त्री आर्यभट्ट ने इस बात की खोज कर ली थी कि पृथ्वी गोल है। वह अपनी धुरी पर घूमती है तथा इसकी परिधि लगभग 24835 मील है, जो कि आधुनिक युक्तियों से

ज्ञात परिधि से मात्र 0.2 प्रतिशत ही भिन्न है। आर्यभट्ट ने गणित और खगोलकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, इनमें से प्रमुख कार्यो की संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :-

1. **पाई के मान की खोज :** पाई की खोज तथा इसके मान की गणना सबसे पहले आर्यभट्ट ने ही की थी। आर्यभट्ट के गणितपद 10 में दिए गए वर्णन के अनुसार पाई का मान निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र दिया गया है :-

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्विषष्चटिस्तथा सहस्राणाम्।
अयुतद्वयविष्कम्भस्य आसन्नो वृतपरिणामः।।

अर्थात् सौ में चार जोड़े फिर आठ से गुणा करें उसमें 62000 जोड़े तथा फिर 20000 से भाग देकर भागफल निकालें। इससे प्राप्त परिणाम पाई का मान होता है। जो कि 3.1416 आता है।

2. **शून्य की खोज :** जिस शून्य को गणितीय गणनाओं में और कम्प्यूटर के विकास के आधार पर माना जाता है कि उस शून्य की खोज भी आर्यभट्ट ने की। सच तो यह है कि शून्य की खोज, गणित एक सर्वश्रेष्ठ खोज है हमें इस बात का गर्व है कि भारत ने विश्व को शून्य जैसा अति महत्त्वपूर्ण अंक खोज कर दिया। आर्यभट्ट ने ही सर्वप्रथम संख्याओं के स्थानीय मानक पद्धति के बारे में जानकारी दी। इस सम्बंध में प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंसटीन ने भी कहा कि था कि हम भारतीयों के अत्यंत आभारी हैं कि उन्होंने हमें गणना करना सिखाया। जिसके बिना कोई भी ठोस और उपयोगी वैज्ञानिक खोज संभव नहीं होती।

3. **वर्गमूल निकालने की विधि की खोज :** संख्याओं के वर्गमूल और घनमूल निकालने की विधि की खोज आर्यभट्ट ने की थी। इस संबंध में आर्यभटटीय में निम्नलिखित सूत्र दिया गया है।

''भागं हददेव गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गोद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मुलम्।''

जिसके अनुसार किसी भी संख्या का वर्गमूल निकालने के लिए उसके अवर्ग स्थान वाले अंक को, वर्ग स्थान वाले अंक के वर्गमूल के दो गुने से भाग देना और फिर इसके वर्ग को अगले वर्ग स्थान वाले अंक में से घटाना चाहिए।

4. **त्रिभुज का क्षेत्रफल :** आर्यभट्टीय के गणित पद 6 में उन्होंने त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का निम्नलिखित सूत्र दिया है :-

''त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटी भुजार्धसंवर्ग :।''

जिसके अनुसार त्रिभुज का क्षेत्रफल उसकी एक भुजा और उस पर सम्मुख शीर्ष बिन्दु से डाले गए लम्ब के गुणनफल के आधे के बराबर होता है।

5. **त्रिकोणमिति की खोज :** भारत ने त्रिकोणमिति की खोज के रूप में गणित के क्षेत्र में विश्व को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि दिया है। आर्यभट्ट ने ही त्रिकोणमिति की मुख्य आधार ज्या की अवधारणा दी जिसे अंग्रेजी में साइन कहते हैं। आर्यभट्ट ने इसे अर्धज्या यानि 'हाफ कॉर्ड' कहा।

6. **ग्रहों की गति का वर्णन :** आर्यभट्ट अपनी पुस्तक आर्यभट्टीय में ग्रहों की गति का वर्णन किया है। उन्होंने यह तथ्य स्थापित किया कि पृथ्वी अपनी अक्ष पर निरंतर घूमती रहती है। इस सम्बंध में उन्होंने निम्नलिखित सूत्र दिया :

कक्षा प्रतिमण्डलगा भ्रमंति सर्वेगृहा स्वचारेण।
मन्दोच्चादनुलोमं प्रतिलोमंचैव शीघ्रोच्चात।।

अर्थात् मध्यग्रह अपनी कक्षाओं में घूमते हैं तथा वास्तविक ग्रह समकेन्द्रीय वृतों में घूमते हैं। सभी ग्रह, चाहे वे अपनी कक्षाओं में घूमने वाले हो या समकेन्द्रीय वृतों मे, अपनी-अपनी गति से शिरोबिन्दु यानि अपोजी से घड़ी की विपरीत दिशा में तथा भूसमीपक बिन्दु यानि पेरीजी से घड़ी की दिशा में चक्कर लगाते हैं । यहाँ यह जानना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि आर्यभट्ट के यह नियम गति के संबंध में दिए गए कैपलर के प्रथम नियम से बहुत पहले 5 वीं सदी में दिए गए थे। जबकि कैपलर का नियम 17 वीं सदी में आया। ग्रहों की गति के संबंध में आर्यभट्ट ने कहा कि नाव में बैठा व्यक्ति जब जल प्रवाह के साथ आगे बढ़ता है तब वह समझता है कि वृक्ष, पाषाण, पर्वत आदि पदार्थ उल्टी गति में जा रहे हैं। उसी प्रकार गतिमान पृथ्वी पर से स्थित नक्षत्र भी उल्टी गति से जाते हुए प्रतीत होते हैं।

7. **ग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या :** सौर मंडल में ग्रहण की घटना इससे पूर्व एक दैवीय अशुभ घटना माना जाता था। ग्रहण लगने की घटना की सटीक और वैज्ञानिक व्याख्या आर्यभट्ट ने 5 वीं शताब्दी में ही कर दी थी। इस सम्बंध में उन्होंने कहा कि

'' छादयति शशि सूर्य शशिनं महती च भूच्छाया ।''

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है तथा पृथ्वी की विशाल छाया चन्द्रमा को ढक लेती है तब ग्रहण की घटना होती है। इस संबंध में आर्यभट्ट ने कहा कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमते हुए सूर्य की परिक्रमा करती है और इसी तरह चन्द्रमा भी अपने अक्ष पर घूमते हुए पृथ्वी की परिक्रमा के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा करता है। इस दौरान जब चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है तो वह सूर्य को ढक लेता है जिसके कारण सूर्य हमें प्रकाशहीन दिखाई देता है और इस घटना को सूर्य ग्रहण कहते हैं। इसी तरह जब सूर्य व चन्द्रमा के बीच पृथ्वी आ जाती है, पृथ्वी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है। ऐसे में चन्द्रमा सूर्य का प्रकाश प्राप्त नहीं कर पाता है तो इस घटना को चन्द्रग्रहण कहते हैं।

8. **खगोलीय पिंडो के परिभ्रमण काल की गणना :** आर्यभट्ट ने

विभिन्न खगोलीय पिंडों द्वारा उनकी कक्षा में चक्कर लगाने में लगने वाले एक चक्कर यानि परिभ्रमण काल की गणना की। उन्होंने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने की सही-सही गणना की। उन्होंने स्पष्ट किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमते हुए सूर्य की परिक्रमा 24 घंटे में नहीं, बल्कि 23 घंटे 56 मिनट तथा 1 सकेण्ड में पूरी करती है। उनके अनुसार एक साल में 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनट और 30 सेकेण्ड होते हैं।

इसके अतिरिक्त आर्यभट्ट का ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व पहले ही ज्योतिष विज्ञान की खोज कर ली थी। आज भी हिन्दू पंचांग तैयार करने में उनके द्वारा लिखित आर्यभटटीय सूत्रों की मदद ली जाती है। आर्यभट्ट ने दशमलव प्रणाली का भी विकास किया। गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उनके अभूतपूर्व योगदान को देखते हुए भारत के प्रथम उपग्रह का नाम भी उन्हीं के नाम पर आर्यभट्ट रखा गया है। हमें गर्व है कि हमरा जन्म ऐसे देश में हुआ है जहाँ आर्यभट्ट जैसे महान विद्वानों ने जन्म लिया।

डॉ. देवी प्रसाद वर्मा (देवी बाबू) ओजस्वी एवं मिलनसार व्यक्तित्व के धनी

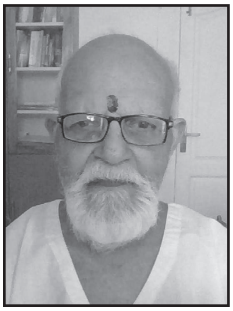

डॉ. देवी प्रसाद वर्मा जी का जन्म 10 मई 1934 को कोलकत्ता (पं. बंगाल) में श्री गणेश प्रसाद वर्मा व श्रीमती रमावती वर्मा के घर हुआ। एम. ए. गणित कक्षा में प्रथम आने पर स्वर्णपदक व विश्वविद्यालय की सभी स्नातकोत्तर कक्षाओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर दूसरा स्वर्णपदक प्राप्त किया। पी. एचडी. करने बाद साइंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय में पहले प्रोफेसर व बाद में गणित के विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। अपने हजारों शिष्यों को मार्गदर्शन दिए, उन्हीं शिष्यों में से एक आनन्द कुमार 'सुपर 30' के संस्थापक भी हैं। देवी बाबू आधुनिक गणितज्ञ और वैदिक गणित के मर्मज्ञ थे।

विद्या भारती पूर्वोत्तर क्षेत्र में शिशु शिक्षा प्रबंध समिति बिहार का गठन का 15 अगस्त 1977 को हुआ। वे संस्थापक मंत्री बने। श्री कृष्णचंद गांधी जी का उन पर पूर्ण विश्वास था। गांधी जी ने बिहार-झारखंड क्षेत्र की जिम्मेदारी देवी बाबू को सौंपा। उन्हें सन् 1994 में विद्या भारती उत्तर पूर्व क्षेत्र के क्षेत्रीय संगठन मंत्री का दायित्व मिला, जिसका उन्होंने अपनी सुझबूझ से कुशलतापूर्वक 2001 तक निर्वहन किया। उनके दायित्व के दौरान् 200 विद्यालयों से 300 विद्यालयों तक प्रगति बिहार-झारखंड क्षेत्र में हुई।

1994-95 में श्रद्धेय पूज्य रज्जू भैया जी व पूज्य के. सी. सुदर्शन जी की प्रेरणा से वैदिक गणित का शिक्षण प्रारम्भ हुआ। वैदिक गणित निर्देशिका के साथ अनेक वैदिक गणित पुस्तकों की रचना में उनकी अहम भूमिका रही। देवी बाबू को सन् 2001 में विद्या भारती के अखिल भारतीय वैदिक गणित संयोजक का दायित्व मिला जो सन् 2009 तक रहा। श्री देवी बाबू जी ने बातचीत के क्रम में बताया था कि जिस भी विद्यालय में प्रवास होता था, पहले चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को बुलाकर आत्मीय व्यवहार से विद्यालय का सम्पूर्ण हाल-चाल जानते थे। प्रधानाचार्य, आचार्य के साथ ही कर्मचारी वर्ग को जलपान में सम्मिलित करवाते थे। उन्होंने सामाजिक समरसता के कई प्रतिमान स्थापित किए। एक बार प्रदीपिका के तत्कालीन सम्पादक श्री विश्वरत्न जी के आग्रह पर अभिभावक सम्पर्क व प्रबोधन विषय पर लेख माँगने पर बोले कि हमारी योजना के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ अब धीमे हो गए हैं, भविष्य इसे और सुदृढ़ करना होगा। उचित मार्गदर्शन करते हुए उन्होंने लेख लिखे। जीवनपर्यन्त वैदिक गणित हेतु मार्गदर्शन किए। उन्होंने विद्या भारती के द्वितीय वैदिक गणित संयोजक के रूप में चिंतन - मनन करते हुए अपने कार्य को विश्व में प्रतिष्ठित किया। विद्या भारती में वैदिक गणित के वे आधार स्तम्भ थे। विद्या भारती के प्रथम मंत्री डॉ गुज्जरमल्ल वर्मा जी की जन्मभूमि कानपुर में दिनांक 25 अप्रैल 2021 को उन्होने अपनी जीवन की अंतिम यात्रा पूर्ण की। विद्या भारती परिवार उनको नमन् करता है।

श्रद्धांजलि

Jh fouk;djko 'ks.Mw;s % fo|k] foosd] fou; o lq;'k ds izfreku

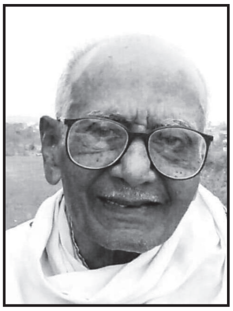

विनायक राव शेण्ड्ये के साथ संस्कारयुक्त शिक्षा और सेवा की लगभग एक सदी का चमकदार और प्रेरक पन्ना धूमिल हो गया। चैत्र नवरात्र के प्रथम दिवस नव संवत्सर प्रारम्भ के दिन 95 वर्ष की आयु में बाबा देवलोक प्रस्थान कर गए। उन्हें कई रूपों में याद किया जाएगा। विद्या, विनय और विवेक के आदर्श प्रतिमान। मूल्यों और आदर्शों पर चलकर कर्मठता के साथ सर्वजन हिताय अपना पूरा जीवन समर्पित कर देने वाले मनीषी व्यक्तित्व। विनायक राव शेण्डूये स्वतंत्रता पूर्व और स्वाधीन भारत के लम्बे कालखंड के साक्षी और इतिहास बन गई अनेक घटनाओं में भागीदार और किरदार भी रहे हैं। बुन्देलखंड अंचल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और शेण्डूये परिवार एक दूसरे के पर्याय रहे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार का दमोह आगमन हुआ तो उस समय के नामी वैद्य श्री पांडुरंग जी शेण्डूये की अगुवाई में प्रथम सरसंघचालक का स्वागत हुआ और दमोह में शाखा का शुभारम्भ हुआ। वैद्य शेण्डूये जी ने दमोह में संघ का संगठन किया और शाखा में उनके साथ स्कूल में पढ़ने वाले उनके दोनो पुत्र सीताराम और विनायक राव भी नियमित जाने लगे। विनायक राव शालेय शिक्षा पूर्ण कर उच्च्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय चले गए। जहाँ उन्होंने फार्मेसी में स्नातक की उपाधि हासिल की। बनारस में अध्ययन के दौरान उन्हें महामना मदन मोहन मालवीय जी का आशीर्वाद मिला। उसी समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के दायित्व भी सम्हाला। 1948 से 1959 तक बतौर संघ प्रचारक उन्होंने बनारस, इलाहाबाद, मेरठ, आगरा, अलीगढ़, मिर्जापुर आदि स्थानों पर कार्य किया। प्रचारक जीवन में रहते हुए उन्होंने भाऊराव जी देवरस, नानाजी देशमुख, अशोक सिंहल जैसी विभूतियों के साथ काम किया। बड़े से बड़े आयोजन के कुशलतापूर्वक प्रबंधन में विनायक राव की महारत थी। यही कारण है कि संघ के द्वितीय सरसंघचालक गुरुजी के भी वे प्रिय पात्र थे। प्रयाग कुंभ और अर्धकुंभ के अवसर पर विश्व हिन्दू सम्मेलन के आयोजन में व्यवस्था प्रमुख का दायित्व निभाया। विनायक राव जी से मुलाकात के मायने होते थे अतीत के कितने संस्मरणों से अपनी जानकारी समृद्ध करना। आजादी के बाद पहले आम चुनाव थे तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के खिलाफ विपक्ष के उम्मीदवार थे प्रसिद्ध संत प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी के चुनाव के संचालक का दायित्व मिला विनायक राव को। बिना विशेष साधन-वाहन के कैसे सौजन्य सहायता लेकर मुकाबला किया जाता है यह उन्होंने कर दिखाया। विनायक राव जी वह संस्मरण भी सुनाते थे कि कैसे पंडित दीनदयालजी की इलाहाबाद की धरा पर घटी एक घटना ने एकात्ममानववाद की अवधारणा से जोड़ा। विनायक राव जी 1960 में परिवार जनों के आग्रह पर प्रचारक जीवन से निवृत्त होकर गृहस्थ जीवन में आ गए पर घर गृहस्थी के साथ ही संघ के प्रकल्पों के माध्यम से शिक्षा और समाज सेवा के क्षेत्र में अपनी श्लाघनीय सेवाएँ देते रहे। देशभर में संघ की विचारधारा आधारित सरस्वती शिशु मंदिर योजना के क्रियान्वयन और विस्तार में नींव के पत्थर विनायक राव जी भी हैं। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मंदिर योजना को लागू करने में विशेष भूमिका निर्वहन किया। संघ प्रवर्तित शिशु मंदिर योजना का देश में पहला ग्रामीण विद्यालय सागर जिले के खैराना में खोला गया था। उसके सूत्रधार शेण्डेय जी थे। वह विद्या भारती मध्यक्षेत्र के अध्यक्ष भी रहे। आदर्श और मूल्यों से कभी समझौता न करना जैसे उनके स्वभाव में शामिल था। आपात्काल के दौर में मीसा के तहत जेल गए पर सक्रिय राजनीति में कभी नहीं आए। राजनीतिज्ञ उनका आशीर्वाद लेने आते थे पर कभी अपने परिवार जनों के लिए सिफारिश करना उन्हें रास नहीं आता था। बहुत स्वाभीमानी थे। पर विद्यालय के लिए दान पाने के लिए मधुकरी पर भी उतर आते थे। वे कहते थे दान मांगने से हमारा अंहकार छूटता है। जन्मदिन पर पुष्पहार और फल भी लेते थे। भगवान को अर्पित करने को कहते थे। निस्पृह कर्मयोगी थे। जब तक शरीर साथ दिया पुस्तकों और शास्त्रों का अध्ययन करते रहते थे और मेरे जैसे सैकड़ों लोगों का ज्ञानवर्धन करते थे। बाबा बौद्धिक वैचारिक और मेधा सम्पन्न व्यक्तित्व थे। वह उन विरले सौभाग्यशाली व्यक्तियों में शुमार थे जिन्हें सभी स्वनामधन्य सरसंघचालक, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, अटल बिहारी वाजपेयी आदि विभूतियों का सानिध्य मिला। मुरलीमनोहर जोशी ने तो उनके साथ संघ कार्य किया था। विनायक राव जी ने 'जस का तस धर दीनी चदरिया' की तरह अपना जीवन पूर्ण किया जब-जब सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी, पारदर्शिता, शूचिता, कर्मठता और मूल्यों की चर्चा होगी विनायक राव पांडुरंग शेण्ड्ये याद आयेंगे।

-नरेन्द्र दुबे , वरिष्ठ पत्रकार, दमोह

Ckkjg&iky dh ?kqeUrw tkfr;ksa dk egÙo

यायावर

श्री शैलेन्द्र विक्रम
शोध अध्येता
समाजिक कार्यकर्ता
मंत्री, सेवा भारती दिल्ली

संपर्क
मो. 9717334419

घुमन्तू जीवन-यापन करने वाले लोगों से सभी का परिचय हुआ होगा। प्रायः यह समाज शहरों के मुख्य मार्गों, पार्कों, नालों या खाली पड़ी जमीन के आस-पास छोटी-छोटी झुग्गियाँ बनाकर रहता दिखाई दे जाएगा। सम्पूर्ण समाज में इन लोगों के प्रति नकारात्मक धारणा बनी हुई है। कई जगह इन्हें जरायम पेशा वाला (हत्या और लूटपाट आदि) समाज कहा जाता है। कई जगह पर इन्हें कूड़ा बीनने वाला और भीख माँगने वाला समाज भी कहा जाता है। कुल मिलाकर घुमंतू समाज को समाज के सबसे निचले पायदान पर देखा जाता है। पूरे भारत वर्ष में घुमन्तु समाज के अनेक प्रकार दिखाई देता है। जैसे सपेरा, भांड, नट, जोगी, कंडारा, लद्ध, पारदी, सबर, गाड़िया लोहार, कंजर सपेरा, सपेरा और पेरना इत्यादि। भारतीय जन मानस में कई बार समय-समय पर इन घुमन्तु समाज के लोगों को उनके अस्थाई वास से हटाने के लिए प्रयास किया जाता रहा है। कई बार इन्हें बेघर भी होना पड़ता है। अनेकों बार समाज के अराजक तत्त्वों के द्वारा इस समाज की बहनों को परेशान भी किया जाता है। अर्थात् यह मूलभूत सुविधाओं से कोसो दूरी पर स्थित दिखाई देता है।

परंतु कुछ ऐसे भी प्रबुद्ध लोग हैं जिन्होंने इन घुमन्तू समाज के लोगों के जीवन स्तर में बदलाव लाने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है। वास्तव में भारतीय पृष्ठभूमि में घुमन्तु समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि सभी घुमन्तू समाज के साथ अलग-अलग इतिहास जुड़ा हुआ है। कोई समाज भगवान शिव से संबंध रखता है तो कोई महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी से अपना सम्बंध स्थापित करता है।

बारहपाल

बारहपाल के अन्तर्गत भगवान शिव से संबंध रखने वाले 12 प्रकार के विशिष्ट गोत्रों को शामिल किया जाता है। इनकी विशिष्टता इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि ये सभी गोत्र वाले मूलतः घुमन्तू समाज से संबंधित है। इन गोत्रों में नाथ सपेरा, बहुरूपिया, भांड, ग्याहरा, कबूतरीनट, कठपुतली, जोगी, भोपी, देया, कंडारा वांवी, लद्धड़ व करू, नामक घुमन्तु जातियाँ शामिल हैं। उद्देश्य अलख की रोटी, पलक का खजाना, भूख लगे तो माँग कर खाना। अर्थात् समाज को जगाओ, अलख निरंजन करो। यह बताओ कि इस संसार का सार केवल शिव है। शिव तभी मिलेंगे जब आप सभी प्रेम व निष्ठापूर्वक अपने माता-पिता गुरुजनों छोटे-छोटे व बड़ों का सम्मान आदरपूर्वक करोगे। समाज में समता की भावना को उत्पन्न करते हुए बिना रूके दूसरे स्थान को गमन करोगे यानि आपके लिए पलक खजाना जैसा रहेगा। मतलब पलक झपकते ही स्थान परिवर्तन करना। यदि कहीं व कभी भूख लग जाए तो तुरंत ही समाज से माँगकर भोजन करना। तात्पर्य यह है कि घूमते रहना इनके कार्य का मूल पहलू है। इसके पीछे मान्यता है कि जब भगवान शिव जी का विवाह हो रहा था तब उस समय समस्त ज्ञानवान प्राणियों को आमंत्रित किया गया था। सभी ने बहुत अच्छे प्रकार से वहाँ भोजन पाया। इस बारात में कुछ ऐसे भी लोग थे जो विभिन्न मुद्राओं का हाव-भाव से समाजिक जनों का मनोरंजन करते हुए आ रहे थे। इन्हें अपनी कालाबाजी दिखाते हुए काफी समय लग गया जब ये लोग बारात में पहुँचे तब तक भोजन समाप्त हो चुका था। इन्हें बहुत भूख लगी थी तब इन्होंने समीप से माँग कर भोजन किया। जब भगवान शिव को यह सब मालूम हुआ तो उन्होंने इन समाज के लोगों को आदेश दिया कि आज से ये लोग विभिन्न प्रकार से समाज का जागरण और प्रबोधन का कार्य करोगे। भूख लगने पर समाज से माँगकर खा लिया करना। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तब से आज तक यह समाज भगवान् शिव के दिखाए रास्ते का अनुसरण करते हुए समाज के प्रबोधन के कार्यों में लगा हुआ है। दिल्ली

के ख्याला सपेरा बस्ती में रहने वाले किशन बहुरूपिया के अनुसार बारहपाल के इस समाज ने कई हजार वर्षों के कालक्रम में बहुत परिवर्तन देखे। हमारा संबंध भोलेनाथ से इतना मजबूत है कि हमने शिवजी से संबंधित विभिन्न पंथों को अपना कर उनके द्वारा बताए हुए रास्ते का अनुसरण करते हैं। इन्हें ठीक से समझने के लिए बारहपाल के समाज को समझना आवश्यक है।

सपेरा

बारहपाल के अन्तर्गत सबसे पहला समाज गुरु गोरखनाथ जी और गुरु मत्स्येन्द्र नाथ जी के विचारों का अनुयायी है। बीन बनाना व बजाना, साँप, पकड़ना, साँप का खेल दिखाना व इनके जहर को कम करने वाली दवा का व्यापार करना प्रमुख कार्य था। इस समाज ने मनुष्यों का प्रकृति के साथ रहने का चलन उत्पन्न किया। साथ ही यह भी बताया कि जहरीला से जहरीला प्राणी हमारा मित्र है। साँपों के माध्यम से कई असाध्य रोगों का इलाज संभव है। परन्तु हजारों वर्षों के लम्बे संघर्ष के कारण आज हमारे बीच यह जानकारी ना के बराबर है। कई आदिवासी क्षेत्रों में आज भी साँपों के माध्यम से असाध्यरोग को ठीक करने का चलन है। स्मरण रहे इस प्रक्रिया में साँपों की हत्या नहीं होती, वरन् सांपों के निवास स्थलों की मिट्टी को साँपों द्वारा उत्पन्न की गई गर्मी ही असाध्य रोगों के इलाज में सहायक होती है। सपेरा समाज को इसका बहुत अच्छा अनुभव है।

वास्तव में सपेरा समाज ने समस्त विश्व को बताया कि साँप मनुष्यों के शत्रु नहीं मित्र हैं । ठीक वैसे जैसे गाय, बैल, भैंस, व बकरी इत्यादि जीव हमारे अस्तित्व के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। यह समाज सम्पूर्ण भारत वर्ष में झुग्गियों-झोपड़ियों में सदियों से रहता आ रहा है। एशिया की सबसे बड़ी सपेरा बस्ती पद्मकेश्वरपुर है। यह उड़ीसा राज्य के भुवनेश्वर में स्थित है। इस गाँव में लगभग 500 परिवार निवास करता है।

इस समाज के साथ एक कथा प्रचलित है। भारतवर्ष के उत्तरी भाग में सर्पों के राजा वासुकी का शासन था। राजा जनमेजय नागवंश के कट्टर विरोधी थे। दोनों के बीच कई बार युद्ध हुआ, परन्तु ऋषि आस्तिक की सूझ-बूझ के कारण दोनों में समझौता हो गया। समझौते के कारण नागवंश को भागमती आज का दक्षिणी अमेरिका जाना पड़ा। आज भी दक्षिणी अमेरिका का अमेजान वन, संसार में सबसे बड़ा वन है। जहाँ अत्यधिक विषैले साँप रहते हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सपेरा समाज न केवल भारत वर्ष में बल्कि विश्व में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सपेरे जैसे अनेकों घुमन्तु समाज है जो शेष विश्व में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। लेकिन इनका मूल निवास स्थान भारत वर्ष ही है। हमें सपेरा समाज को दीनहीन नहीं समझना चाहिए।

बहुरूपिया भांड

बारहपाल के अन्तर्गत आने वाली घुमन्तु जाति इनका दूसरा नाम ‘ढोली राणा डूम मरासी है, इनका काम राज दरबारों में रूप बदल-बदल कर राज्य परिवारों मंत्रियों, सामंतों और प्रजाजनों का मनोरंजन करना था। परन्तु रूप बदलने में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक था कि लोगों के मनोरंजन के साथ-साथ धर्म के प्रति जन-जागरण का भाव बना रहे। सामान्य अर्थों में इन्हें ही बावनरूपिया या जोकर भी कहा जाता है।

नटमरासी

इस घुमन्तु समाज के लोग खेल संस्कृति के बहाने समाज का जागरण करते थे। जैसे रिंग से निकलना, पैर में रस्सी बाँधकर खेल दिखाना आदि।

कबूतरी नट

इस गोत्र के लोगों का मुख्य कार्य बाँस पर खेल दिखाना या गली में रस्सी बाँधकर संतुलन स्थापित करना है। यह परम्परा बहुत प्राचीन समय से भारत में रही है।

कंडारा नट

खेल संस्कृति में एक बड़ा नामी गोत्र शिव जी से संबंधित है। वहीं से निकला यह अद्भूत खेल। इससे सम्बंधित लोग इस खेल में हांडी को तोड़कर उसके मुँह के हिस्से में आग लगाकर थोड़ी दूरी से छलाँग लगाकर निकलते हैं।

बांबी

इस गोत्र के लोग जादू का खेल या तमाशा दिखाते हैं पूरे विश्व में जादू के खेल का यही समाजवाहक है। इसके माध्यम से इस गोत्र के लोगों ने भी न केवल समाज का मनोरंजन करने का कार्य किए अपितु ईश्वर के प्रति भी आस्था को बनाए रखने का बहुत प्रभावशाली कार्य किया।

लच्छड़

खेल संस्कृति का वाहक यह समाज शहरों या गाँवों के मुख्य मार्ग में एक दूसरे के कंधे पर कूदते हुए, फायर करते हुए सामाजिक जनों का मार्गदर्शन व मनोरंजन करते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे राष्ट्र को बहुत पहले से ही बारूद का ज्ञान था।

कारू समाज

खेल संस्कृति में एक बड़ा नाम ये लोग दूसरे पर कूदते हुए व झाडू से एक दूसरे को मारते हैं। कालांतर में झाडू से मारना टोने -टोटके के रूप में शामिल कर लिया गया।

कठपुतली

इन्हें भाट जी भी कहा जाता है। इनका मुख्य कार्य कठपुतली का नाच दिखाकर लोगों का मनोरंजन करना है। आज भारतीय समाज में

कठपुतली वालों की बड़ी प्रसिद्धि है।

जोगी

इस गोत्र के लोगों ने जनजागरण की जो परम्परा सदियों पहले स्थापित की थी आज भी वह परम्परा उसी रूप में भारतीय समाज में देखी जा सकती है। इस गोत्र के लोग पीला या भगवा वस्त्र धारण करके दो, तीन या पाँच लोगों के समूह में गाँवों और शहरों में भ्रमण करते हुए अलख निरंजन करते प्रवास करते हैं। अर्थात् भगवान् शंकर जी के भजनों का गायन कर शंकर जी के प्रति लोगों की श्रद्धा बनी रहे, उसका प्रयास करते हैं । भारत और भारतीयता हमेशा प्रगतिशील रहे। सभी जन स्वयं की आत्मा को ईश्वर का अंश समझें। अपनी शरीर को मंदिर जैसा समझकर पवित्रता पूर्वक विश्व कल्याण में लगे रहें। यही उनका संदेश है।

भोपी

इस गोत्र के लोग छाप(सूप) बनाते हैं भारत में सूप और झाड़ू को लक्ष्मी माना जाता है। सूप से चावल, दाल, चना आदि के धूल या छोटे कणों को साफ किया जाता है। उत्तर भारत में इस प्रक्रिया को पछोरना कहते हैं। भारतीय समाज में घर में प्रयोग हेतु आवश्यक समानों को हर कोई नहीं बना सकता था। प्रायः प्रत्येक सामान के निर्माण हेतु कोई विशेष जाति का निर्धारण हुआ था। हमारे गावों में आज भी यह परम्परा देखी जा सकती है। पहले उनको बहुत सम्मान हासिल था इस समाज को। परन्तु एक लम्बे संघर्ष के कारण बहुत कुछ नष्ट प्राय जैसा हो गया। वास्तव में घुमंतु समाज कोई अलग समाज नहीं है। यह समाज हमारे समाज का ही अंग है। जिसने शेष समाज की भलाई के लिए स्वयं और अपने परिवार के लिए सुख व सुविधाओं का त्याग अपने व्यक्तिगत जीवन कर से दिया। इनके मूल में भारतीयता विद्यमान रही है। इस परिवर्तनशील युग में घुमन्तू समाज के योगदान को महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया। इन्हे वह स्थान नहीं मिला जिनके वे हकदार थे और आज हैं भी।

वनवासी बंधु–भगिनी का देश के अस्मिता की रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

सरकारी भाषा में वनवासियों को अनसूचित जनजाति (शिड्यूल्स ट्राइब्स) कहा जाता है। अंग्रेजों ने इन लोगों को हिन्दू समाज से अलग करने की कुटिल नीति के तहत आदिवासी (ट्राइबल्स) नाम दिया जो आज भी प्रचलित है। हम लोग इन्हें हिन्दू समाज का अभिन्न अंग मानते हैं तथा 'वनवासी' शब्द से सम्बोधित करते हैं। हमें 'अनुसूचित जनजाति' और वनवासी इन शब्दों में अंतर स्पष्ट करना चाहिए। वास्तव में अनुसूचित जनजातियाँ तो राजनीतिक दबावों के द्वारा बनाई गईं हैं। लक्षद्वीप समूह का उदाहरण लें तो वहाँ अधिकांश लोग केरल के तट से कई सौ वर्ष पहले जाकर बसे थे। अरबों से उनका सम्पर्क हुआ और आज वे सभी इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं फिर भी इन्हें जनजाति माना जाता है। हिमाचल प्रदेश के 'किन्नौरा' नामक जाति में ब्राह्मण, ठाकुर आदि उपजातियाँ होती हैं जबकि वनवासियों में उपजातियाँ नहीं होती। परन्तु किन्नौरा जाति को जनजाति माना जाता है और सभी को समान लाभ दिया जा रहा है। प्रायः वनवासियों के विषय में यह धारणा प्रचलित है कि वे असभ्य एवं हिंसक होते हैं किन्तु वह धारणा गलत है। वनवासी समाज निष्कपट तथा सेवाभाव, स्वाभिमान, त्याग, भक्ति, शौर्य, पराक्रम के गुणों से सम्पन्न होता है। भगवान राम से लेकर महाराणा प्रताप तक एवं शिवाजी के काल तक देश रक्षा के लिए समय-समय पर प्रकट किए गए उनके पराक्रम तथा बलिदानों की गाथाएँ भारतीय इतिहास की धरोहर हैं। 1857 व उसके बाद भी अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने के लिए लड़े गए स्वाधीनता संग्राम में वनवासियों का योगदान महत्त्वूपर्ण रहा। उनमें अनेक सुकोमल मानवीय गुण नगरवासियों की तुलना में अधिक व्यापक रूप में पाये जाते हैं। हम तो आजकल केवल 'अतिथि देवो भव' मात्र का उद्घोष करते हैं परन्तु वनवासी बंधुओं में तो अभी तक यह परम्परा पहले से ही प्रचलित है। इसी प्रकार वनवासी भूखा मर जाएगा, पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाएगा। वास्तविकता यह है कि अनेक श्रेष्ठ गुणों की दृष्टि से शहरी लोग इनके सामने बौने हैं।

(विद्या भारती प्रदीपिका, वनवासी शिक्षा अंक से)

धरोहर

/kwy rsjs pj.kka nh ¼/kwy rsjs pj.kksa dh½

पंजाबी कहानी

लोचन बक्शी

अनुवादक - डॉ. उमेश वर्मा

जे मिले ते मस्तक लाईए, धूल तेरे चरणाँ दी।

साधु संगत पढ़ रही थी और पाकिस्तान स्पेशल यात्रियों की जत्थे को लिए हुए छकाछक उड़े जा रही थी। बाहर दूर तक रेगिस्तान फैला हुआ था। कभी-कभी बाजरे के खेत दिखाई दे जाते थे या कहीं पीले फूलों वाले बबूल के काँटेदार पेंड़ दीख पड़ते थे। इससे हटकर सारा दृश्य हरियाली के बगैर सुनसान था। पालासिंह खिड़की के बाहर देख रहा था। उसकी पगड़ी धूल से अटी हुई थी। रेतीले मैदान से एक बगुला उठा और हवा के जोर से गाड़ी के अंदर आ गया।

'खिड़की बंद कर दो' जत्थेदार जी बोले। पालासिंह मुस्करा दिया। 'यही तो हमारे देश की मेवा है, बादशाहों। तुम इसे रेत कहते हो, इस रेत के लिए तो मेरी आँखे तरस गईं।'

आज चौदह साल के लम्बे अरसे बाद पाला सिंह देश जा रहा था। आज से चौदह साल पहले यह उसका अपना देश था-यह रेगिस्तान देश। रावलपिंडी के पश्चिमी रेतीले इलाके में उसका गाँव था, घर था, जमीन थी, एक दुनिया थी फिर न जाने क्यों लोगों के सिर पर पागलपन का भूत सवार हुआ और बैठे-बिठाए पराए हो गए। पालासिंह अपना सबकुछ पीछे छोड़कर सरहद के पार चला आया। अब यूँ तो उसके पास सब कुछ था, घर-घाट था, माल-असबाब था, लेकिन वह दुनियाँ न थी। अपने दालान का कुआँ उसे कभी न भूला। वैसे तो उसे अपने देश की हर चीज़ प्यारी थी पर कुएँ से उसे विशेष स्नेह था। पाला सिंह का गाँव उस इलाके में था जिसके चारों ओर रेगिस्तान फैला था। यहाँ की खुश्क बंजर धरती में और कोई फसल पैदा नहीं होती थी, केवल बाजरा होता था। जिसके बारे में लोग कहा करते थे यह रूखे लोगों की रूखी पैदावार है। सारे इलाके में न हीं पानी था न कहीं पानी का निशान। लोग मीलों सफर तय कर ऊटों और गधों के ऊपर मश्कें लाद हजारों मुसीबतें झेलकर पीने का पानी लेने जाया करते थे।

पाला सिंह का बाप चौधरी हीरा सिंह सचमुच एक हीरा ही था-एक अनमोल हीरा। सुबह उठने पर अगर किसी को उसके दर्शन हो जाते तो वह समझता कि आज का दिन भाग्यशाली है। हीरा सिंह बड़ा दमदार व्यक्ति था। पूजा-पाठ में व्यस्त रहने वाला, साधु स्वभाव, जिसके दालान में सदा साधू संतों की भीड़ लगी रहती थी। एक बार उसके द्वार पर एक महात्मा आए। चौधरी ने उनकी बहुत सेवा की। चौघरी की सेवा से प्रसन्न होकर महात्मा ने कहा, ''जोगी चौदह बरस का चिल्ला काटकर आया है, माँग क्या माँगता है?''

''सब आपकी कृपा है'' चौधरी बोला।

''देख ले चौधरी, तेरी खुशी है।''

''महाराज.... इस धरती को किसी का पाप लगा है, कई साधू , महात्मा यहाँ आए। यह धरती उनके चरणों से पवित्र हुई लेकिन लोग उसी तरह दुखी रहे।'' चौधरी ने कुछ सोचते हुए कहा।

''क्यों ?''

''यहाँ की धरती बांझ है और पानी खारा। पीने का पानी लाने के लिए लोगों को बहुत दूर तक जाना पड़ता है। महाराज, यदि आप कृपा करके हमलोगों के इस कष्ट का निवारण कर सकें तो बहुत लोगों का भला होगा।'' चौधरी ने कहा।

''बहुत अच्छा, फिर तू इसका पात्र है क्योंकि तू सभी की भलाई चाहता है। ऐसा करना कि जिस जगह जागिया का यह चूल्हा है, यहीं से धरती खुदवाना और इस जगह कुँआ बनवाना। किसी को पानी भरने से मना मत करना।'' महात्मा बोले।

चौघरी ने मिट्टी खुदवानी प्रारम्भ कर दी। कई मजदूर जुट गए। दिन-रात काम होने लगा।

अनुवादक संपर्क

मो. 9013319761

कई दिनों के खुदाई के बाद भी पानी की एक बूँद तक न मिल सकी। खुरदरी रेत निकलती रही।

''यूँ कोई बहकाने वाला योगी था। यदि बाँझ धरती से इस तरह पानी के सोते फूटने लगते तो इस रेगिस्तान में इतनी दिखाई न देती'' लोग कहते रहे।

लेकिन चौधरी हीरा सिंह का हृदय सागर की तरह अथाह और विशाल था। वह अपनी धून में मगन और अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से पानी की प्रतीक्षा में मिट्‌टी खुदवाने में लगा रहा। उसने आशा का छोर नहीं छोड़ा। अंत में पूर्णिमा के दिन उसके खुदवाए हुए कुएँ में पानी का सोता फूट पड़ा। पानी इतना मीठा कि कुछ न पूछिए।

चौधरी हीरा सिंह ने भगवान् का धन्यवाद किया और अपने इस खजाने का मूँह खोल दिया। उसका कुआँ इलाके में बेजोड़ था। रात-दिन वहाँ मेला लगा रहता। लोग आते, अपनी प्यास बुझाते और उसे दुआएँ देते चले जाते। जब से पाला सिंह ने होश सम्हाला यह कूआँ उसके विचारों में छाया रहा। विचारों पर तो क्या, उसकी मन की गहराईयों में पानी की इस मिठास ने अपना घर बना लिया था। यदि वह अपनी स्मरण शक्ति पर जोर भी देता तो भी वह उस कुएँ के संसार से आगे नहीं जा सकता था। चारदीवारी वाली बड़ी हवेली में उस कुएँ को विशेष महत्त्व प्राप्त था। वास्तव में इस हवेली में अगर कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु थी तो यही कुआँ था। उसके चारों ओर चबूतरा बना हुआ था। चबूतरे के चारों ओर सीढ़ियाँ थीं। मुंडेर के पास बड़े शातीर गढ़े हुए थे। जिन पर रस्सी की रगड़ से कुछ धारियाँ सी बन गईं थीं और उनसे रस्सी फिसल जाती थी। पाला सिंह ने सोचा, 'जब उसने पहली बार आँख खोली होगी तो सचमुच उसकी छोटी आँखों ने पहली बार निगाह में इस कुएँ को ही देखा होगा। जहाँ रेगिस्तान की अल्हड़ नौजवान लड़कियाँ और औरतें कच्चे घड़े, गागर और कलसे लेकर पानी भरने आया करती थीं। उसे याद आया कि पहले पहल हीं उसकी भेंट अपनी पत्नी हरनामकौर से हुई थी। झुट्‌पुटा सा हो रहा था। उसने देखा कि हरनाम कौर जल्दी-जल्दी कदम उठाती हुई आई और कुएँ की मुंडेर पर चढ़ गई। उसने गागर वहाँ रखी और कुएँ में लोटा लटका कर पीछे सारी रस्सी छोड़ दी। रस्सी रेशम की डोर की फिसलती हुई चली गई और दूर पानी में लोटे के गिरने की आवाज आई। उसने दोबारा लोटा पानी में खंगाला और फिर जाँच तोलकर रस्सी समेटने लगी। पाला सिंह इन तमाम घड़ियों में उसे देखता रहा। गागर भरकर उसने कुएँ की मेड़ पर रख दी और इधर उधर झांकने लगी। सांझ साँवली हो चली थी और बबूल के पेड़ की परछाईयाँ घनी हो चली थीं। पालसिंह कुछ झिझकते हुए आगे बढ़ा और बोला - ''मैं हाथ बटा दूँ?''

''चल परे हट ओ छोकरे, बड़ा आया पहलवान कहीं का। मैंने भी तो इसी कुएँ का पानी पिया है।'' और उसने पाला सिंह को देखते-देखते गागर को एक झटके में अपने सिर पर रख लिया और फिर रेत पर छमछम पाँव रखती हुई पलक झपकते बबूल के पेड़ की छाँव में वह गुम हो गई थी। अगर अंधेरा ज्यादा गहरा न होता तो पाला सिंह उसके पैरों की रेत पर बनाई हुई उस लकीर को देर तक देखता रहता। पैरों के निशान देखना भी उसका एक शौक था। ये निशान उसके कुएँ से आरम्भ होकर रेगिस्तान में चारों ओर बिखर गए थे। इन निशानों की उसे इतनी पहचान हो गई थी कि वह यह बता सकता था कि अनगिनत निशानों में कौन सा निशान हरनाम कौर की चारदीवारी में जाकर गुम हो जाते हैं और फिर हरनाम कौर के साथ उसकी शादी हो गई। वे दिन भी खूब थे। वे दोनों सारा दिन बाजरे के खेतों में किलकारियाँ मारते रहते। वह उसे ढोल सिपहिया, बाँन्कया माहिया (सजीला जवान, बांका प्रेमी) कहा करती। वह उसको खूह तों पाणी भरेंदिए मुटियारे नी (कुएँ से पानी भरती हुई अल्हड़ युवती) वाला गीत सुनाया करता था। अगर कभी उन्हें गाँव के बाहर जाना पड़ता तो वह दोनों उदास हो जाते।

''हरनामकौर, तू असल में बाजरे की कोंपल है जिसके फलने-फूलने और बढ़ने के लिए सिर्फ रेगिस्तानी ज़मीन ही चाहिए।''

''रेतीली धरती तो खैर ठीक है लेकिन तुम्हारे कुएँ का ठंढा और मीठा पानी भी तो सौ दवाओं की एक दवा है।''

''यह तो बिल्कुल सच कह रही है, हरनाम कौर। मैं अपने कुएँ के पानी के लिए तो मैं खूद भी तरस गया हूँ।''

''अपने वतना दियाँ ठंडियाँ छाँवों वे, (अपने देश की ठंढी छाँव और सर्द हवाएँ) लगियाँ निभाईं वे, मिजी छोड़ न जाईं वे,

दम्म दया लोभिया वे, परदेश न जाई वे। (प्रीत की रीत निभाना, मुझे छोड़ कर न जाना, ओ पैसे के लोभी, परदेश न चले जाना।) गीत के अगले बोले हरनाम कौर पूरे कर देती है।

आज पालासिंह काले कोस तय करके देश पहुँचा था। पाकिस्तान एक्सप्रेस छकछक उड़ती जा रही थी। खिड़की से बाहर कहीं-कहीं बबूल के पेड़ खुले हृदय से स्वागत कर रहे थे। उसके विचारों पर एक झीना आवरण छाया हुआ था और उस पर कई पगडंडियाँ उभरी हुईं थीं जो सब उसके देश को जाती थीं। कुएँ वाले गाँव को जहाँ बाजरे की कोंपल बढ़कर पक जाती थी और काँटों भरे पीले बबूल के फूल खिलते थे।

छकछक करती हुई रेलगाड़ी रेगिस्तान से गुजरते हुए बाजरे के खेतों को पार करती जब आऊटर सिगनल के पास गुजरी तो उसकी चाल धीमी पड़ गई। पालसिंह मन ही मन बहुत खुश हुआ कि कुछ पलों के बाद वह अपनी मंजिल पर पहुँच जाएगा। उसने दूर स्टेशन पर खड़े हुए आदमियों को पहचानने की कोशिश की, ये तमाम लोग उसके स्वागत के लिए आए थे जो पाकिस्तान के रेगिस्तानी इलाकों की यात्रा

के लिए वहाँ पहुँच रहे थे। जब पाला सिंह को इस यात्रा की खबर मिली थी, तो वह बहुत ही, खुश हुआ था क्योंकि यात्रा के स्थानों में उसका गाँव शामिल था। उसके गाँव के पास एक धार्मिक स्थान था। गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तो ढोल-ताशे बजने लगे। पालसिंह को लगने लगा कि जैसे वह किसी की बारात में आया है। उसका और उसके साथियों का उल्लास भरा स्वागत किया गया। उसके गाँव के मुसलमान मित्र उससे और उसके साथियों से बारी-बारी मिल रहे थे। पालसिंह से हरेक आदमी गले से मिला। इस भीड़ में उसके कितने मित्र ही थे, अल्लारक्खा, मिर्ज़ा अशरफ और राजा जहाँदाद।

''सुना यार अल्लारक्खे, तेरा क्या हाल है ?''

''बस उसका फज़ल है, तू अपनी सुना।''

इस तरह एक दूसरे से गले मिलते और कितनी ही छोटी-मोटी बातें पूछते, सुनाते हुए वह सब गाँव की ओर चल पड़े। रेलवे स्टेशन गाँव से दो मील की दूरी पर था पाला सिंह ने जीवन में इस दो मील की यात्रा को जीवन में कई बार पूरा किया था। उस समय जब वह बहुत छोटा था अपने साथियों के साथ दो बार स्टेशन जरूर जाया करता था। उस छोटे से स्टेशन पर ब्रांच लाईन की दो गाड़ियाँ तो दिन भर में जरूर आया करती थीं। अप और डाउन। वे गाड़ी आने के पहले ही स्टेशन पहुँच जाया करते थे और जब तक गाड़ी स्टेशन से रवाना न हो जाती मंत्रमुग्ध से वहाँ खड़े रहते। उसे याद है एक बार गाड़ी के डिब्बे में कुछ गोरे सिपाही बैठे हुए थे। उन सबने जब तीखी निगाहों से उन लोगों की ओर देखा तो एक गोरे ने उन्हें डाँट पिलाई थी। इस पर सब हँस पड़े थे। एक गोरे ने संतरे और माल्टे के ढेरों छिलके उनपर दे मारे थे। जब गाड़ी चलने लगी तो एक गोरे ने माल्टे की टोकरी उनकी ओर फेंक दी थी। सब ने एक-एक माल्टा बाँट लिया था। खाली टोकरी को औंधा करके अल्लारक्खा ने सिर पर रख लिए था और फिर वह गोरे की नकल करता हुआ अकड़ कर चलने लगा था, उसे याद था, वह खिल्खिलाकर कह उठा था टोपी वाले साहब का क्या कहना।

''साब !'' पाला सिंह ने कहा। उसके मुँह से ''साब'' शब्द सुनकर अल्लारक्खा उसपर निछावर हो गया। किसे मालूम था कि इस तरह से भी भेंट होगी।

अरे अभागे। कुएँ से कुआँ नहीं मिल सकता लेकिन इंसान से इंसान तो मिल ही सकता है। सच ही कहा तूने, यार।

पाला सिंह ने अपने कुएँ के बारे में पूछा, अपने खेतों के बारे में पूछा। अपनी हवेली के बारे में पूछा। सारा रास्ता इस तरह कट गया। पाला सिंह के मकान में अब कोई महाजर अर्थात् शरणार्थी परिवार बस गया था।

''यह तो बहुत अच्छा हुआ, हमारा घर तो आबाद है।'' पाला सिंह ने कहा।

''और तुम्हारी जमीन भी किसी महाजर के नाम से अलॉट हो गई है।'' किसी ने कहा।

''जमीन उसकी होती है जो उसकी सेवा करता है, भाईयों, अब वह मेरी कैसी?''

''और तुम्हारी हवेली को भी हम लोगों ने पंचायत घर बना लिया है। यह तो और भी अच्छा किया।'' आज पाला सिंह तुम सबका साझी बन गया, इससे बड़ी खुशी और क्या होगी।

पाला सिंह ने पूछा, ''मेरे कुएँ का हाल तो सुनाओ। उसे यूँ लगा जैसे अल्लारक्खा कुएँ के बारे में कुछ कहते-कहते झिझक गया था।

यात्रियों ने पूरे धर्मस्थान की झाड़ पोंछ की, धोकर फर्श की ईंटें चमकाईं और जैसे-जैसे ईंटे निखरती जातीं लगता उनकी आत्माएँ किसी अलौकिक प्रकाश से प्रकाशित होती जा रही हैं। तीन दिनों तक शबद कीर्तन चलता रहा और अखंड पाठ होता रहा। तीसरे दिन जब यात्रियों का जत्था लौटने वाला था पाला सिंह मुँह अंधेरे जाग गया। अभी झुटपुटा ही था। वह अपने गाँव की ओर चल पड़ा। यहीं वह गाँव था जहाँ उसने जन्म लिया था, जहाँ वह पला था, जहाँ वह जवान हुआ था।

उसके पैरों में नरम-नरम रेत इस तरह बिछ-बिछ जाती थी जैसे धरती ने उसके स्वागत के लिए मखमली कालीन बिछा दिया हो। बहुत दिनों बाद रेत पर चलना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा के झोकों से बाजरे की बालिया झूम रही थीं। फिर हवा का एक झोंका आ गया और पाला सिंह को अपने खेतों की वह गंध जानी पहचानी सी लगी।

अपने गाँव की हरएक गली वह जानता था, हर मोड़ को वह पहचानता था, यहाँ तक कि वह अंधेरे में पाँव रखते ही वह बता सकता था कि यहाँ से कितनी दूर एक गड्ढा है। सरदारों की हवेली की पथरीली दीवार उसके साथ चल रही थी। उसे याद आया कि जरा आगे जाकर जहाँ दीवार बाईं ओर मुड़ती है पत्थर का एक कोना आगे की ओर निकला हुआ है। अगर वहाँ से असावधानी से निकला जाए तो आदमी के हाथ-पैर टूट सकते हैं। उस जगह पहुँच कर उसने अनजाने ही उस पत्थर का स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया, वह वैसे का वैसा आगे निकला हुआ था। कहीं कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वहीं वह गाँव, वहीं गलियाँ सिर्फ वहाँ पाला सिंह न था।

लेकिन यह क्या ? उसके कुएँ पर श्मशान जैसा सूनापन क्यों? वह झांझरों और गागरों के स्वर, वह चंचल अठखेलियाँ आज क्यों नहीं? और वह भोच्चका सा सीढ़ियाँ चढ़कर अपने कुएँ के पास खड़ा हुआ। उसने देखा कि कुएँ पर कोई लोटा न था, चरखी के साथ हमेशा लिपटी रहने वाली वह जंजीर भी नहीं थी, लौटे की खैर कोई बात नहीं, लेकिन जंजीर के न होने पर उसे अचम्भा हुआ। उसने अपने

स्वभाव के अनुसार पड़ोस के मकान की दीवार पर दौड़ाई। यहाँ रस्सी के साथ उनका लोटा हमेशा लटका रहता था। उसने वैसे ही खोए-खोए लोटा दीवार से उतारकर कुएँ में लटका दिए। चरखी की आवाज एक भयानक चीत्कार के साथ चारों ओर गूँज उठी। निंदियारे वातावरण में यह आवाज बहुत अनोखी मालूम हुई। जितनी देर उसने लोटा कुएँ से निकाला सारा गाँव उसके चारों ओर इकट्ठा हो चुका था।

''पाला सिंह, अरे पाला सिंह, इस पानी में जहर मिला हुआ है।''

''जहर, यह क्या कह रहे हो?''

''खत्री इसमें जहर मिला गए हैं''

पाला सिंह को याद आया कि देश के बँटवारे के समय बहुत सी स्त्रियाँ अपना सतीत्व बचाने के लिए इस कुएँ में कूद गईं थी। उसे बहुत दुख हुआ। अमृत आज विष में बदल चुका था। वास्तव में अमृत और विष इक्टठे रहते हैं। जब देवताओं और राक्षसों ने अमृत निकालने के लिए समुद्र को मथा था तो अमृत और विष साथ निकले थे।

पाला सिंह जोर से चीखा, ''यह पानी ज़हर नहीं अमृत है। यह सतियों का कुआँ है। हमारे बुजुर्गों ने हम सभी की भलाई के लिए इस कुएँ को खुदवाया था। लेकिन तुमने उसे ज़हर बताकर बंद करवा दिया, अरे नासमझो, यह ज़हर नहीं अमृत है, अमृत है। सारे गाँव वालों को देखते-देखते पाला सिंह उस पानी को गटागट पी गया। लोग आश्चर्य चकित पत्थर की मूर्ति बने खड़े थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि वे चौदह वर्षों तक अंजान बने रहे। अपने पास ही अमृत का स्रोत होते हुए भी वे कितनी मुसीबतें उठाकर कोसों दूर पानी लाने के लिए जाते रहे। पाला सिंह ने सम्मान और श्रद्धा के साथ अपने कुएँ का पानी बोतल में भर लिया। दिन को पाला सिंह और उसके साथियों का जत्था बड़ी चारदीवारी वाली हवेली के पास से निकला तो उसकी आँखों में आँसू छलक रहे थे। यह मेरा घर है, मेरी ज़मीन है। यह मेरी हवेली है, यह मेरा कुआँ है और जो कुएँ पर पानी भर रहीं है, मेरे मित्र अल्लारक्खा की बेटी है। अल्लारक्खा की कहाँ खुद मेरी बेटी ज्ञानी जी। मैं बहुत खुश हूँ। तुम्हें क्या बताऊँ, मैं बेहद खुश हूँ।

'साधू संगत चली जा रही थी।' जिस गाँव को छोड़ दिया उसका अब नाम क्या लेना? पाला सिंह पलभर के लिए रूका। उसने झुककर धरती को प्रणाम किया, मुट्ठी भर रेत उसने अत्यंत स्नेह श्रद्धा और सम्मान के साथ कागज में लपेट कर अपनी जेब में रख ली और जोर-जोर से शबद के वही बोल पढ़ता जत्थे के साथ मिल गया - ''जे मिले ताँ मस्तक लाइए, धूल तेरे चरणा दी।''

विद्या भारती, पंजाब प्रांत द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति : क्रियान्वयन हेतु दो दिवसीय कार्यशाला

हार्दिक अभिनन्दन
राष्ट्रीय शिक्षा नी

जालंधर, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सर्वहितकारी शिक्षा समिति पंजाब के विद्यालयों में लागू करने के लिए योजना बनाकर क्रियान्वयन हेतु दो दिवसीय कार्यशाला में विचार-विमर्श किया गया। यह कार्यशाला दिनांक 3 व 4 अगस्त 2021 को हुई। विद्या भारती उत्तरक्षेत्र के महामंत्री श्री देशराज शर्मा ने उद्घाटन सत्र में उद्बोधन देते हुए कहा कि हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रावधानों को अनुरूप अपने विद्यालयों हेतु विषयों की योजना बनानी है। इन योजनाओं को सरकारी तंत्र के पास भी पहुँचाना है। हमें इस संबंध में अपने विषयों की एक टोली का निर्माण करना है जो अपने विषय में पूर्णतः तज्ञ हों।

समापन सत्र में विद्या भारती उत्तर क्षेत्र के संगठन मंत्री श्री विजय नड्डा ने कहा कि देश का विकास लार्ड मैकाले के शिक्षा नीति के द्वारा सम्भव नहीं, इसलिए देश के विकास हेतु अपने भारतीय मापदंडों पर आधारित शिक्षा नीति से होगा। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू होने से उत्तम सुअवसर मिला है। इसे हमें यूँ ही जाने नहीं देना है। इस नीति को लागू करवाने का दायित्व हमारा है।

इस कार्यशाला में पंजाब प्रांत के 25 शिक्षाविद् शामिल हुए। पंजाब प्रांत के अध्यक्ष श्री जयदेव बातिश जी ने कार्यशाला के अंत में धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहा कि करीब डेढ़ साल बाद हमारे विद्या मंदिर पुनः आरम्भ हो चुके हैं। हम सभी का दायित्व है कि कोरोना की तीसरी लहर को रोकने के लिए हमें बनाए गए दिशानिर्देशों का कठोरता से पालन करना होगा।

jktk f'koN=ifr

पुस्तक वीथि

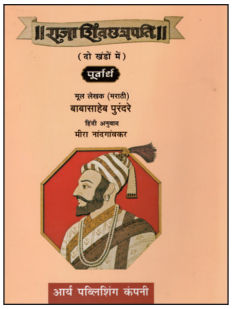

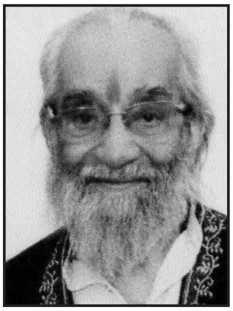

श्री बाबा साहब पुरन्दरे

अनुवादक
श्रीमती मीरा नादगांवकर

समीक्षक
श्री लक्ष्मीनारायण भाला
'लक्खीदा'

संपर्क
मो. 9818400713

पद्मविभूषण बाबा साहेब पुरन्दरे द्वारा मराठी में लिखित तथा हिन्दी में मीरा नांदगांवकर द्वारा अनुवादित राजा शिवछत्रपति एक प्रेरणादायी ग्रंथ है। पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध इन दो खंडों में प्रकाशित यह जुड़वा ग्रंथ एक बेजोड़ रचना है। केवल इतिहास-लेखन या घटनाओं के वर्णन तक सीमित होता तो संभवतः यह जुड़वा ग्रंथ मराठी में सत्रहवें संस्करण के रूप में छपने का अवसर नहीं पाता परंतु यह छत्रपति शिवाजी के रणकौशल का जीवंत चित्रण होने के कारण लगातार पचास वर्षों तक मराठी पाठकों की आँखों का तारा बना रहा। सन् 2012 में छपे अठारहवें संस्करण को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मराठी वलय को लाँघ कर इस जुड़वा ग्रंथ ने हिंदी वलय में प्रवेश किया। अनुवाद करने का बीड़ा उठाया पूणे निवासी मीरा नांदगांवकर ने। उनके पति अशोक नांदगांवकर ने बाबा साहेब द्वारा प्रयोग में लाए गए कुछ शिवाजी कालीन शब्दों का भावार्थ समझाकर अनुवाद कार्य को गति दी। दुर्भाग्यवश अनुवाद के दौरान ही अशोक नांदगांवकर इहलोक त्याग कर सद्गति को प्राप्त हुए । अनुवाद का कार्य बाधित हुआ परन्तु रुका नहीं और अंततः अक्टूबर 2019 में इस जुड़वा ग्रंथ का प्रथम हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ। बाबा साहेब पुरन्दरे की तपस्या से तपे हुए शब्दों को उसी उदात्त भाव के साथ हिन्दी में तराशना सरल कार्य नहीं था परन्तु इस कठिन कार्य को मीरा नांदगांवकर ने लगन के साथ किया। लेखक की दमदार मराठी को उन्हीं की लयबद्धता एवं ओजस्विता के साथ हिन्दी में अनुवादित कर हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने के लिए अनुवादिका मीरा नांदगांवकर निश्चित ही धन्यवाद की पात्र हैं।

'राजा शिवछत्रपति' का पूर्वार्ध दो प्रकरणों एवं चार आक्रमणों की परिधि में सिमटा हुआ है। आक्रमण के लिए मराठी का प्रचलित शब्द है चढ़ाई। अनुवादिका ने उसी शब्द का उपयोग करते हुए अगले प्रकरणों को चढ़ाई : शिवनेरी दुर्ग पर, चढ़ाई : प्रतापगढ़ युद्धकाल, चढ़ाई : सिद्दी जौहर, चढ़ाई : शाहिस्ताखान इन चार प्रमुख आक्रामक घटनाओं और उससे जुड़े अन्य घटनाचक्रों के साथ में लिपिबद्ध किया है। इसी क्रम से उत्तरार्ध को भी मीर्जाराजा जयसिंह, आगरा का शिकंजा, स्वराज की प्रतिष्ठापना, राज्याभिषेक एवं अंत में दक्षिण-दिग्विजय इन चढ़ाइयों के आभामंडल से आलोकित किया गया है।

प्रारम्भिक दो प्रकरणों तथा कुल नऊ आक्रमणों या चढ़ाइयों के रोमांचक वर्णनों में लगभग 110 घटनाओं एवं 25 प्रमुख व्यक्तियों तथा स्थानों का चरित्र-चित्रण एवं विश्लेषण इन दोनो खंडों में समेटा गया है। ऋषि वाल्मीकि द्वारा जिस दण्डकारण्य के परिसर में पौराणिक ग्रंथ के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का काव्यमय इतिहास ''रामायण'' लिखा गया था, उसी बीहड़ वन के रोचक वर्णन के साथ इस जुड़वा ग्रंथ के पूर्वार्ध का प्रारम्भ किया गया है। यह बात लेखक की उस कल्पकता को प्रकट करती है कि भले ही लेखक ने महर्षि वाल्मीकि के समान ही अपनी आँखों के सामने सारी घटनाओं को देखा ना हो परन्तु पाठक को वह मानों 'आँखों देखा हाल' बता रहे है। बाबा साहेब पुरंदरे ने इस ग्रंथ की रचना से पूर्व किए गए अपने लेखन कार्य का इतिहास भी ग्रंथ की भूमिका में बेवाक ढंग से लिखा है। हर पाठक उस भूमिका को मनोयोग से पढ़े तो उसके भी मन में लेखक बनने की इच्छा एवं बन पाने का आत्मविश्वास जगेगा इसमें संदेह नहीं है।

छत्रपति शिवाजी की मातोश्री के जन्मस्थान की जानकारी देने के लिए लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करते हुए आक्रांताओं के महाराष्ट्र में हो रहे प्रवेश की जानकारी पाठकों को दी है। ऐतिहासिक घटनाक्रमों के क्रम को बनाए रखते हुए इतिहास से पाठकों को अवगत करने वाली लेखनशैली पाठकों की जिज्ञासा को बढ़ाती रहने में सक्षम है। जिज्ञासू बना हुआ

पाठक सहज ही बुलढाना जिले के ग्राम सिंदखेड़राजा में पहुँच कर जीजाबाई के जन्मस्थल का आभासी दर्शन भी कर लेता है। जीजाबाई का विवाह एवं शिवाबा का जन्म आदि मंगलकार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाने के बाद शिवाजी का बाल्यकाल जिन संस्कारों में पल-बढ़ रहा था उसका वर्णन पाठकों की जिज्ञासा को भी बढ़ा देता है। शिवाजी के पिताश्री निजाम के दरबार में कार्यरत थे यह जानने वाला पाठक जब यह जान जाता है कि उत्तर भारत से आक्रमण करने वाले मुगलों को दक्षिण भारत में प्रवेश करने से पूर्व ही खदेड़ देने की योजना के तहत उन्होंने निजाम का साथ दिया था तो शाहजी की रणनीति पर गर्व होता है। यद्यपि कुछ वर्षों के भीतर ही मुगल और निजाम एक सूत्र में बंध गये और शाह जी का सपना चकनाचूर हो गया। जीजा माता के समान ही पिता शाहजी के लिए भी अब शिवाबा को महाराष्ट्र में मुगल और निजाम पैर ना जमा पाए ऐसी स्थिति उत्पन्न करने वाले वीर पुत्र के रूप में देखना था। बालक शिवबा को पराक्रमी देशभक्त बनाने के लिए किए जा रहे प्रयासों में छद्म युद्ध से लेकर रामायण की कथा तथा वीरों की कार्यशैली से अवगत कराने वाले प्रसंग सुनाने का क्रम जारी था।

दूसरे प्रकरण में लेखक हमें महाराष्ट्र की सीमा लाँघ कर बेंगलुरु तथा दक्षिण में सह्याद्रि की पर्वत माला तक पहुँचा देते हैं। उपन्यास न होते हुए भी उपन्यास की रोचकता, काव्य न होते हुए भी शब्दों की लयबद्धता एवं नाटक न होते हुए भी संवाद स्थापित करने की कुशलता का मिलाजुला असर पाठक को बाँधे रखता है। अब तक छद्मयुद्ध करने वाले शिवबा को 'शिवाजी' के रूप में रणक्षेत्र में भेजने वाले उनके पथ प्रदर्शक दादोजी कोंडदेव को पाठकों से परिचित कराते हुए लेखक आगे बढ़ते हैं। अनुवादिका महोदया ने सम्भवतः अनजाने में ही दादोजी को दादाजी लिख दिया, जिसे दादोजी ही पढ़ा जाना उचित होगा। जिस प्रकार कान्होंजी जेधे कान्हाजी नहीं कहलाएँगें तद्वत् दादोजी को भी दादाजी न कहे। खैर विषयान्तर न करते हुए अगले भागों में भी हुई इस प्रकार की असावधानी को नजरअंदाज करना ही उचित है जैसे देशपांडे को देशपांडा लिखा जाना। अस्तु ....

प्रकरण 2 के बाद हर प्रकरण आक्रमण से जुड़ा है। यद्यपि दादोजी कोंडदेव इहलोक की यात्रा पूरी कर परलोक सिधार चुके थे, परन्तु उनके द्वारा सिखाई गई आक्रामकता शिवाजी की रणनीति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी थी। शिवाजी के विषय में लिखने वाले इतिहासकारों या लेखकों के द्वारा जो चरित्र अवहेलित या उपेक्षित रह जाता है वह व्यक्ति है शिवाजी के पिता शाहुजी महाराज। इस ग्रंथ के लेखक ने उनका विस्मरण नहीं होने दिया। यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। चढ़ाई के पहले प्रकरण में शिवाजी के पिता का घायल होकर बंदी होना तथा उन्हें छुड़ाने हेतु प्रयास करें तो उन्हें मार डालने की आशंका प्रबल होना ऐसी एक विचित्र स्थिति का विवरण है। इस अवस्था में आक्रामकता हानिकारक होगी। अतः शिवाजी दिल्ली के मुगल सल्तनत के सुलतान शाहजहाँ को जो पत्र लिखते हैं, वह प्रसंग एवं उसके परिणाम को जानने की जिज्ञासा पाठक को पढ़ते रहने को बाध्य करती है। इतिहास का यह एक अनोखा पृष्ठ है।

पुस्तक में अंकित रेखाचित्र भी इतने आकर्षक एवं संदेशवाही है कि हर रेखाचित्र का संदर्भ जिस घटना का संकेत देता है उसे जानने हेतु पढ़ने के लिए मन उतावला हो जाता है। चढ़ाई : प्रतापगढ़ युद्ध काल इस प्रकरण के प्रारम्भ में कवि भूषण की वह प्रसिद्ध कविता दी गई है –'इन्द्र जिमि जंभ पर, बाढ़व सुअंभ पर. . ।' शिवाजी द्वारा किए गए कई महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रकरण को गरिमापूर्ण बना रहे हैं यह बात इस कविता की उपस्थिति से ही स्पष्ट हो जाती है। इस भाग में 'किला प्रतापगढ' शीर्षक के अन्तर्गत अफझलखान के साथ शिवाजी के मिलन का प्रसंग इतना रोचक एवं विस्तृत ढंग से लिखा है कि बार-बार पढ़ने का मन कर जाए। बड़ों से सलाह-मशवरा कर उनका आशीर्वाद लेना, साथियों का सहयोग प्राप्त करना एवं छोटे को स्नेह अभय देकर कर्तव्य के प्रति सतर्क रहने की सलाह देना आदि गुणों को आचरण के द्वारा दर्शाते हुए शिवाजी महाराज अपने लक्ष्य की ओर कितनी सावधानी के साथ बढ़े थे इसका वर्णन बाबा साहेब पुरंदरे के समान क्या कोई और कर पाएगा ? पहने हुए कपड़ों को भेद कर हाथ में पहने हुए बाघ नखों का पेट की आतड़ियों तक जाना केवल शारीरिक बल से नहीं तो साथ में अपनाए गए कौशल से ही संभव है। यही बात इस प्रसंग का वर्णन करने वाली भाषा के विषय में कही जा सकती है। भाषा को जब अन्तर्मन की भावना का संबल मिलता है तो वर्णित प्रसंग भी पढ़ने वाले के बुद्धि को चीरकर सीधे हृदय तक पहुँचता है। लेखक की भाषा की यही विशेषता है। अनुवादिका ने भी उसी भावभूमि को सींचा है इसमें संदेह नहीं।

छत्रपति शिवाजी को मुगलों से मुकाबला करने के साथ-साथ अब अँग्रेजों से भी सावधान रहने की स्थिति आ गई थी। वे समझ चुके थे कि अँग्रेज केवल व्यापार करने नहीं आए हैं। उनकी राजनीतिक लालसा है। वे तलवार के बल पर नहीं, तराजु के सहारे सत्ता के गलियारे में जाना चाहते हैं। लेखक ने 'चढ़ाई : सिद्धि जौहर' नामक अध्याय में 'टोपधारी अंगरेज' इस शीर्षक वाले लेख में शिवाजी द्वारा अँग्रजों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति को स्पष्ट किया है। जब कोई लेखक अपने लेख के नायक की अनुभूति के धरातल पर अपने आप को ले जाने में सफल हो पाता है तो उसकी लेखनी वही लिखती है जो नायक सोच रहा होता है। बाबासाहेब पुरंदरे को पढ़ते समय यही अनुभूति पाठक को भी होती रहती है। यहाँ भी लेखक ने शिवाजी की अँग्रेजों के प्रति अपनायी जाने वाली नीति को उसी धरातल पर जाकर लिखा है। अँग्रेजों से तनाव न लेते हुए उनकी व्यापारी प्रवृत्ति को शासन के अनुकूल बनाए रखने की रणनीति शिवाजी ने अपनाई। अब शस्त्र के बदले कानून की लड़ाई लड़नी होगी। इस हेतु संवाद स्थापित करने की

योग्यता जिसमें है ऐसे किसी कुशल मध्यस्थ को यह काम सौंपना होगा। अतः उन्होंने बाजी प्रभु देशपाण्डे को यह दायित्व सौंपा। रीति-नीति निर्धारित करने के बाद यद्यपि बाजी प्रभु देशपाण्डे एक युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए परन्तु पृष्ठ 275 पर छपा 'अँग्रेज कैदी और शिवाजी' का प्रसंग उस रीति-नीति का आभास दिलाता है। नीति निर्धारकों के सहारे शिवाजी की विजय यात्रा तेजी से बढ़ रही थी।

उत्तरार्थ के प्रारम्भ में लेखक महोदय ने अपने मन की व्यथा को इन शब्दों में प्रकट किया है। वे कहते हैं - ''आज एक ओर तो छत्रपति शिवाजी का हिन्दुस्थान गरीबी, अज्ञान, अंधश्रद्धा, दुरभिमान, भाषायी-विवाद, प्रांतवाद, अनुशासनहीनता जैसे सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं से जूझ रहा है, तो दूसरी ओर शिवाजी के जीवन-चरित्र की प्रतियों पर प्रतियाँ छप रही हैं तथा बिक रही हैं। हम इस विसंगति को क्या नाम दें और इसका सही निदान भी क्या करें। इसका एकमात्र उपाय यह है कि छत्रपति के चरित्र तथा उनके विस्तीर्ण चिंतन का पुनः-पुनः स्मरण, चित्रण, मुद्रण, कथन और विवेचन होता रहे। इसी प्रकार किसी शुभ दिन नया सवेरा आएगा और फिर छत्रपति की हिन्दुपद पादशाही की स्थापना का लक्ष्य स्थापित होगा। ''

बाबा साहेब पुरन्दरे का यह जो विश्वास है कि 'फिर से छत्रपति कि हिन्दूपद पादशाही की स्थापना का लक्ष्य स्थापित होगा।' इस लक्ष्य की प्राप्ति में जो बाधाएँ आती हैं, 'चढ़ाई : मिर्जाराजा जयसिंह' वाले इस अध्याय में उसी विषय को प्रस्तुत किया गया है। एक के बाद एक दुर्ग जीत कर हिन्दूपद पादशाही के लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ने वाले शिवाजी बसनूर, पुरंदर, रूद्रमाला आदि दुर्गों के बाद जब वज्रगढ़ पहुँचे तो स्थितियाँ विपरीत थीं। मुगलों की सेना लेकर राजस्थान का वीर सेनानी राजा जयसिंह दिलेरखान को साथ लेकर वहाँ पहुँच चुका था। हिन्दू ही हिन्दू राज्य की स्थापना में बाधा बनकर सामने खड़ा था। उसने मानो यह मान लिया था कि हिन्दू तो केवल मददगार या सेवक ही बनेगा, राज तो मुगल ही करेंगे। आत्मगौरव व आत्मविश्वास की कमी हो तो आत्मबल भी औरों की सेवा में ही लगा दिया जाता है। मिर्जाराजा जयसिंह की भी वही स्थिति थी। हीनमन्यता से ग्रसित जयसिंह अपना आत्मबल मुगल सल्तनत की सेवा में खपा रहा था। छत्रपति शिवाजी छोटे-बड़े सभी हिन्दु राजाओं में व्याप्त हीनमन्यता को कैसे दूर करे, इसी का उपाय खोजने लगे। दुर्घटनाग्रस्त होकर उनके पिता भी स्वर्ग सिधार चुके थे। शिवाजी अपने लक्ष्य के प्रति अडिग थे।मिर्जाराजा जयसिंह के मन में राजपूत होने का तथा हिन्दू होने का स्वाभिमान जगे ऐसा प्रयास शिवाजी महाराज कर रहे थे। पत्राचार एवं साक्षात्कार की निरंतरता बनी रहे ऐसा प्रयास हो रहा था। भेद उजागर हो रहे थे परन्तु जयसिंह का हृदय परिवर्तन असंभव प्रतीत होने लगा। मुगल-मराठों का घनघोर युद्ध भी हुआ। लाशें बिछ गईं, फिर भी हृदय नहीं पसीजा। आपसी समझौते की बात दिल्ली दरबार में करेंगे यह समझा-बुझा कर शिवाजी एवं पुत्र संभाजी औरंगजेब के सामाने हाजिर हुए। बंदी बना लिए गए। आगरा भेज दिए गए। यह सारा घटनाक्रम स्वप्नवत् लग रहा है। लेखक ने भी उसे इसी तरह चितेरा है। 'चढ़ाई : आगरा का शिकंजा' इस अध्याय को पढ़ें तो 'हरिकथा अनंता' की तर्ज पर 'शिव कथा अनंता' की अनुभूति होती है। आगरा के कारागार से शिवाजी एवं संभाजी का गोपनीय एवं सुरक्षित पलायन अपने आप में एक अविश्वसनीय बात को अंजाम देने जैसा ही प्रसंग है। लेखक ने उसे और भी रोचक बना दिया है। अनुवादिका ने मराठी शब्दों का भावपूर्ण अनुवाद करते हुए हिन्दी पाठकों के लिए भी उसे उतना ही आकर्षक बना दिया। दिल्लीश्वर ने धोखा खाया और छत्रपति शिवाजी सह्याद्री की गुफाओं में पहुँच गए।

मिर्जाराजा जयसिंह जैसे चतुर, पराक्रमी और निष्ठावान, हिन्दू की चतुराई, पराक्रम एवं निष्ठा मुगलो के बजाए भारतीयों के लिए समर्पित होती तो अपने देश का इतिहास कुछ और ही होता। ऐसे लोगों की हीनमन्यता को दूर करने के कई उपाय शिवाजी सोच चुके थे। हिन्दवी स्वराज अथवा हिन्दूपद पादशाही स्थापित करने का पहला कदम होगा उसे कर दिखाना। स्वयं एक उदाहरण बनाना। समर्थ रामदास ने कहा है कि 'केल्याने होत आहे रे! आधी केलेचि पाहिजे।' अर्थात् करने से होता है साथी करना शुरू करो।' शिवाजी ने ठान लिया कि अब उन्हें उदाहरण बनना है। जो करना जरूरी है, उसे करके दिखाना है। उन्होंने वही किया।

मिर्जाराजा जयसिंह जैसे ज्ञानी गुणी लोगों की आत्मग्लानि पूरे समाज को आत्मग्लानि के जाल में जकड़ लेती है। इस मकड़जाल से समाज को मुक्त करना हो तो किसी को राजा बन कर राज करना होगा। राजा भी कहलाए किन्तु किसी बादशाह का सेवादार बन जाए तो वह राजा कैसे। अब स्वराज की प्रतिष्ठापना करते हुए स्वयं का राज्याभिषेक करवाया जाए यह बात शिवाजी ने मन ही मन स्थिर कर ली। यह दीवानगी ही दिवानों का इतिहास रचेगी। देश और धर्म के दीवाने ही आत्मग्लानि से देश को उबारेंगे। तदनुरूप रणनीति पर काम प्रारम्भ हुआ। इस कार्य में जिनकी सक्रिय भागीदारी रहेगी उन सबका संक्षिप्त परिचय ही अध्याय 9 का विषय बन गया। इसमें इतिहास के निमित्त बनने वाले, इतिहास को रचने वाले तथा इतिहास के साक्षी रहने वाले इन तीनों प्रकार के लोगों का परिचय पाठक प्राप्त करेंगे।

अध्याय 10 चढ़ाई : राज्याभिषेक है, जिसमें समर्थ स्वामी रामदास से भेंट का ऐतिहासिक प्रसंग है। उसमें उनके द्वारा यह राज्य ईश्वर का है, आप उनके प्रतिनिधि के नाते इसका संचालन करें यह बात कही गई है। बहलोलखान की शरणागति आदि प्रसंगों के बाद वेदशास्त्र सम्पन्न गंगाभट्ट द्वारा शिवाजी को राज्य संचालन हेतु राजा के रूप में राज्याभिषेक करने की घटना को शास्त्रीय आधार देना आदि प्रसंग है। बहलोलखान की विश्वासघातकता और प्रतापराव

गुजर द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त कर उसे परास्त करना तथा अंततः चिरप्रतिक्षित राज्याभिषेक का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाना, इन सब महत्त्वपूर्ण एवं आत्मगौरव बढ़ाने वाले प्रसंगों का वर्णन इस पुस्तक की गरिमा को कई गुणा बढ़ा देती है। लेखक ने कई संदर्भ ग्रंथों एवं तथ्यों का संकलन कर कई अनजान व्यक्तियों के नाम, उनकी महती भूमिका तथा तत्कालीन समाज का यथोचित वर्णन प्रस्तुत किया है जो प्रशंसनीय ही नहीं प्रेरणादायी भी है।

बाबा साहेब पुरंदरे ने शिवाजी के राज्याभिषेक के बाद का विवरण अंतिम अध्याय 11 में किया है। 'राजा शिवछत्रपति' इस जुड़वा पुस्तक के विद्वान लेखक बाबा साहेब पुरंदरे ने छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के मूल में जो भावना थी उसे इन शब्दों में रखा है –''राज्याभिषेक समारोह का मतलब मात्र अपने वैभव का प्रदर्शन, कलाकारों का परामर्श, भोजन, शोभायात्रा तथा सामुदायिक मौजमस्ती नहीं है, वरन इस समारोह में एक उदात्त, तात्विक एवं ऐतिहासिक भूमिका भी थी। हिन्दू जाति (धर्म) को मृतप्राय मानकर, गुलामों की पीढ़ी का ठप्पा लगाकर, इस मुल्क में राज करने की औकात, ताकत और हक सिर्फ हमारा ही है, इस प्रकार की दृढ़ भावना सुलतानों तथा उनके अनुयायियों में पक्की हो गई थी। हिन्दुओं के मन में और खून में भी यही भावना गहरे रच बस गई थी। उनके पास असीम बल और बुद्धि के होते हुए भी उनकी परास्त वृत्ति की वजह से, दूसरों का अनुसरण करने की आदत की वजह से; राजकीय एवं सामाजिक विवेक के अभाव में, हिन्दुओं का सर्वनाश हो रहा था; इसे शिवाजी ने समय से पहचान लिया था। इस भूमि में एक ओर शस्त्रधारी 'जिहादी' बहुत बड़ी तादाद में थे; तो दूसरी ओर भविष्य पुराण को सिरहाने रखकर सोए गाफ़िल स्वजन दिखाई दे रहे थे। शिवाजी ने पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रतिज्ञा की कि इस परिस्थिति को मैं बदलकर रहूँगा।' उन्होंने वह प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई। शिवाजी ने लोगों में कभी भी हार न मानने वाली मानसिकता का निर्माण किया। इसी मानसिकता से अपने राज्य का विस्तार करने हेतु दक्षिण के राज्यों में उनका दिग्विजय उल्लेखनीय है।

पूज्य माताजी अर्थात् माँ साहिबा का महानिर्वाण यद्यपि छत्रपति शिवाजी के लिए वेदनादायी था परन्तु हिन्दु समाज को आत्मग्लानि से मुक्त कर विजिगीषुवृत्ति का धनी बनना यही उनका लक्ष्य होने के कारण उस दुःख से उबर कर उन्होंने अपना विजय अभियान जारी रखा। समर्थ गुरु रामदास ने उनकी इस संकल्प शक्ति एवं दृढ़ता को देखते हुए ही अपनी अभिलाषा के अनुरूप शिवाजी सफलता प्राप्त करें यह सोच कर प्रतापगढ़ के समीप स्थित रामवरदायिनी भवानी से यह वर माँगा जो शिवाजी के द्वारा साकार हो। माँ से उन्होंने याचना की – ''हे माता, धर्म की संस्थापना हो, शुद्ध अध्यात्म प्रकट हो, स्नान, संध्या हेतु तीर्थ जल बहने दो और उस समय तक मैं इस देवकार्य में, धर्म कार्य में, लोक कार्य में अपना जीवन अर्पण करता रहूँ। मेरे जीते जी शिवाजी को विशाल राज मिले, अपार वैभव मिले, अपार-अपार यश मिले, बस ! यही मेरी माँग है।'' आज छत्रपति शिवाजी के हर सच्चे उत्तराधिकारी के लिए हमें ईश्वर से यही प्रार्थना करनी होगी। समर्थ रामदास द्वारा आकांक्षित तथा छत्रपति शिवाजी द्वारा संकल्पित हिंदवी स्वराज या हिन्दूपद पादशाही की स्थापना ही हमारा लक्ष्य हो।

आर्य पब्लिशिंग कार्पोरेशन ने समय की माँग के अनुरूप इस अप्रतिम ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद राजा शिवछत्रपति (दो खंड) का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर हिन्दी जगत् को एक बड़ा उपहार दिया है। इस महत्त्वपूर्ण और सराहनीय कार्य के लिए वे निश्चय ही बधाई के सुपात्र हैं, उन्हें बधाई।

मराठी में लिखी पुस्तक 'राजा शिवछत्रपति' के लेखक बलवंत मोरेश्वर पुरंदरे का जन्म 29 जुलाई 1922 को पुणे (महाराष्ट्र) में हुआ था। बचपन से ही इतिहास में रुचि होने के कारण आपने अनेक किलों, मंदिरों, संग्रहालयों तथा ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण किया। आपने 'गोवा मुक्ति संग्राम में भाग लिया। गोवा के स्वतंत्र होने के पश्चात् सरकार के इतिहास संशोधन केन्द्र में आपको सम्मिलित किया गया। इसके अतिरिक्त आपने सम्पूर्ण विश्व के अनेक ऐतिहासिक स्थानों पर घूमकर शोध कार्य किए।

आपका पहला उपन्यास ''नारायण राव पेशवे' था। आपके द्वारा लिखित अनेक कविताएँ दैनिक केसरी में प्रकाशित हुईं। प्रसिद्ध पुस्तक राजा शिवछत्रपति सहित आपने 25 पुस्तकों का लेखन किया। ऐतिहासिक कथा पर आधारित उपन्यास 'शेलार खिंड' अत्यंत प्रसिद्ध है। 2018 में आपको भारत सरकार द्वारा 'पद्मविभूषण', चतुरंग प्रतिष्ठान मुम्बई द्वारा जीवन गौरव, मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'कालिदास सम्मान' प्राप्त हुआ है।

बाबा साहेब पुरंदरे प्रसिद्ध ऐतिहासिक महानाटक 'जाणता राजा' के लेखक, निर्माता तथा दिग्दर्शक हैं। इस मराठी नाटक के भारत सहित विदेशों में अबतक 1250 से अधिक शो हो चुके हैं। बाबा साहेब शोध विद्यार्थियों के प्रेरणास्रोत तो हैं ही आप सामाजिक कार्यों में भी बढ-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं।

School Complexes – Social Orientation

NEP 2020

Shri D. Ramakrishna Rao
President, Vidya Bharati
Akhil Bhartiya Sikhsha Sansthan
Education Administrator,
Thinker & Writer
Rtd. Principal & Director
Vijana Vihara Residential School
Gudilova A.P.

Contact
Mob. 8008015950

School complex – system is an informal arrangement existed in India and flourished through centuries. This indo-centric pattern is disturbed during the last two centuries and many generations have been brought up in non-Bharateeya pattern of education forgetting collaborative growth.

Socio-centric approach:

Our lead schools were helping each other and mutual cooperation was the watch word. Life skills and social orientation were guiding principles of education in the past. Social responsibility of institution and individuals was the core theme and idea. There was always scope for better exchange of ideas and practices as a part of this socio-centric approach.

Sahodaya – the theme:

A school does not grow in isolation but Sahodaya is the concept. Together we grow for the betterment of the society. 'Sahodaya School Complex' system was initiated by the Central Board of Secondary Education after 1986 NEP was in the process of implementation. Of course in this scheme 5-10 schools affiliated to CBSE located geographically in close proximity coming together to share their experiences, resources and work for scholastic and co-scholastic excellence. It has helped a lot, but activity and drive was dependent on the team leaders.

All Inclusive Growth – Government Schools:

NEP 2020 envisions school complexes or clusters for an inclusive growth of 16 lakh schools across the country. Without improving the quality of government schools which constitute about 12 lakh the education system of India would not get transformed. Single teacher schools, small primary schools, schools in remote, tribal and sensitive areas should not be deprived of collaborative growth and help. Hence school complex system which promotes resources sharing, exchange of innovative practices and common training programme with the help of other stake holders is an immediate necessity for academic excellence and quality improvement.

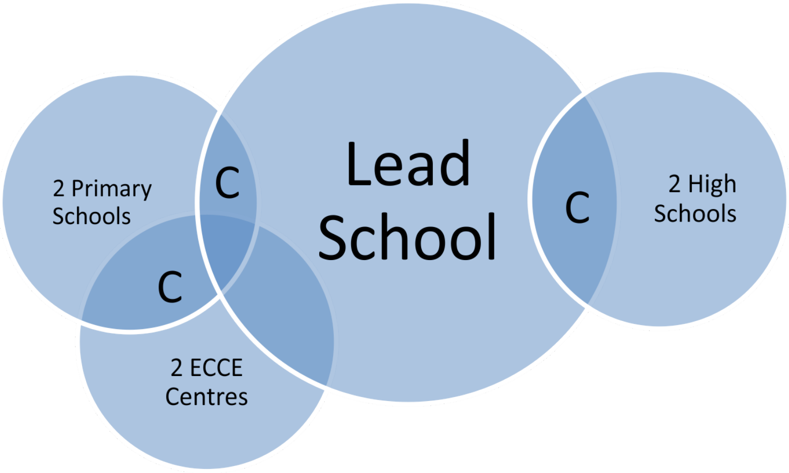

C = Common programmes identifying minimum agreed activity

Lead school adopting at least 7 schools:

A lead school with very good infrastructure, better resources and best practices is to be identified. One senior secondary school should adopt 2 secondary, 2 primary and 2 ECCE centres. Identifying common minimum programme and agreed activity for desired output potential i.e., building required competencies and needed learning outcomes.

Schools – not competitors but samajik chetana kendras:

Schools under different managements and government setup are not competitors but collaborators. But all of them should agree upon the fact that a school is a powerful medium for social, educational and cultural transformation along with economic progress. These lead schools act as catalysts for change. In the above figure, we can observe that the area of interception is the common activity for common good. Man making activity, vocationalization, skilling, innovation, Atal Tinkering Lab, coaching, sewing centres, yoga training, music, common celebrations, etc. may be identified. Bala Samskar Kendras, Matrumandalis, Summer Training Camps can also be held for all stake holders and interested people in the society.

Programmes for better social interaction:

School complex can plan many activities to take school to the society around and bring society to the school for better involvement. Because of this interaction during pandemic our parents are helpful in villages conducting tuition for children after getting minimum training from the school so that children educational basics are attended to.

In conclusion we say let us not the victims of mad race of competition but let us be cooperative and collaborative for transmitting national goals of education.

School Complexes Useful for Weaker Schools

School complexes, seen as the basic unit of educational monitoring through collective efforts at grassroots level . First incorporated in Kothari Commission Report (1964-66), the concept of school complexes is based on the assumption that high and higher secondary schools have better facilities, which can be utilised by the primary and middle schools. The former also have better teaching staff and infrastructure facilities. Five or six primary and upper primary schools form a complex and get their academic and administrative support from the nodal secondary/senior secondary school. The attached schools may arrange co-curricular activities, give better exposure to their students at the school complex. In case of temporary absence of a teacher due to illness or some other reason, the school complex head can provide a substitute from a neighbouring school. A large number of academic issues and problems can be discussed at the school complex level. Its may have been set up with good intention of linking primary and secondary schools to break the isolation and pave the way for them to work together for common good and also to encourage innovation.

It must stem from roots of society. Co-operative efforts will help us to achieve these objectives. Education can make its own contributions to the development of the individual, as well as the well- being of society, only when we can establish a face to face relationship between different schools within easily accessible distances. This can be done only when we develop all schools as a complex.

So a school complex is organized by taking a group of elementary schools, high schools, a training school, a technical school etc. together. These institutions functions cooperatively for the improvement of their educational standards. It will facilitate to provide equal educational facilities and experiences to all the schools.

HISTORY OF INDIAN EDUCATION

(Ancient and Medieval Era)

PERSPECTIVE

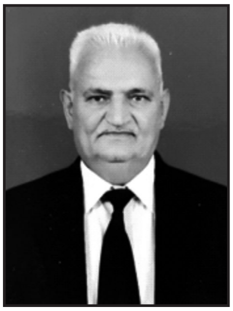

Shri Nar Singh Sehrawat
Retired Value Added Tax Officer
Retired Spl. Metropolitan Magistrate, Delhi
Educationist, Social Worker

Contact
Mob. 93544 67372

Ancient Indian education: -

India's ancient education was based on spirituality. Education was a means of liberation and self-realization. It was not for the individual but for religion. India's educational and cultural tradition is the oldest in world history.

According to Dr. Altekar: - "From the Vedic era till now, education has been meant for the people of India, that education is the source of light and it illuminates our path in various works of life."

In ancient times, education was given utmost importance. India was called 'Vishwaguru'. Various scholars have taught education with metaphors like light source, insight, intergeneration, knowledge and third eye. It was the belief of that era that just as light is the means to remove darkness, similarly education is the means to remove all the doubts and illusions of a person. In ancient times, it was emphasized that education makes the person have a darshan of life. And this enables him to overcome the obstacles of Bhavsagar and attain salvation in the end, which is the ultimate goal of human life.

We see the early form of education of ancient India in the Rigveda. The aim of the Rigveda era's education was metaphysics. Those who interviewed the element with brahmacharya, austerity and yoga practice were famous in the names of sages, vipras, legalists, poets, sages, manishees. The interviewed elements were collected in the form of mantras in the Vedic codes, which had the study of Swadhyaya, Sangopang, Shravan, Manana and Nididhyasana.

The schools were known under the names 'Gurukul', 'Acharyakul', 'Gurugriha', etc. Residing in the clan of Acharya, the students of Guru Seva and Brahmacharya Vratdhari studied the conspiracy Veda. The teacher was called ‘Acharya’ and ‘Guru’ and the student was called Brahmachari, Vratdhari, Antravasi, Antevasi, Acharyakulvasi. Through the mantras, that is, the sages interviewed used to give their realization and its interpretation and use to the Brahmachari, the Antivasi. The Brahmacharis who performed the Vedagraha were the dictators, following the Guru's teachings. Vedantras were memorized. Acharyas used to chant mantras with voice and Brahmachari used to repeat them in the same way. After this, meaning was made. Adherence to Brahmacharya was compulsory for all students. It was also considered necessary for women. A student who practiced celibacy for a lifetime was called a National Brahmachari. Such Vidyarthini Brahmavadini was called.

The rituals of the yagyas should be done in a ritual manner, so it would have been, Ugagata, Adhvaryu and Brahma were given the necessary education. Vedas, education, kalpa, grammar, verses, astrology and the nirukta were his texts. The primary education of a five-year-old boy was started. The ability to get Gurukula education by staying in the Guru Griha was obtained through Upanayan rites. In the 7th year, there was the method of upliftment of a Brahmin child, in the 11th year of Kshatriya, and in the 12th year, of Vaishya. At most, it was in the age of 14, 22 and 24 years. Students practiced 12 years in the Guru Griha, following Brahmacharya. Then they were called bachelors. There was a practice of giving Gurudakshina on the occasion of inclusion. Even after inclusion, graduates used to do self-study. National Brahmachari used to study for a lifetime. At the time of inclusion, Brahmachari used to discard punishment, kamandal, mekhala, etc. Everything which was prohibited in Brahmacharya fast could be used from now on. In ancient India, there was no examination and no degree was awarded. Before teaching the daily lesson, the Brahmachari understood the best taught and practiced it with rules or not, the Acharya used to find out. Brahmachari was always engaged in studies and research and used to give evidence of his merit by joining debate and debate.

Acharya's place in Indian education was very proud. He was respected and respected. Acharya was a learned scholar, virtuous, actionable, self-respecting, self-respecting and always committed to the welfare of the students. The teachers used to build the character of the students, arrange food clothes for them, treat the sick students, and start well. Acharya considered Brahmachari only included in the family and used to treat him like that. Acharya used to give free education with religious wisdom.

The students respected the Guru and obeyed his orders. Acharya was touched and presented for routine in the morning. Taking a posture under the seat of the Guru, staying in a comfortable manner, arranging the Datun etc. for the Guru, lifting and laying his posture, bringing water for bathing, cleaning clothes and food containers on time, collecting fuel , Grazing of animals etc. were considered as the duties of the students. The students used to get up at the Brahmamuhurta and after bathing in the morning, used to take bath, evening, home etc. Then used to study. After this, they used to have food and after rest they took the lessons of Acharya. Brahmachari used to perform evening and home rituals by gathering evening time. Begging was a compulsory act for the student. Students were engaged in meditation and nididhyasana by dedicating food received from begging to Guru.

The study of the Vedas used to begin with the auspicious ceremony of Shravan Purnima and end with the immersion of Pausha Purnima. In the remaining months, the frequency of recurring lessons kept repeating. Students used to take separate lessons, not together. Pratipada and Ashtami were indiscriminate. In the village, town or neighborhood, due to accidental disasters and arrival of aristocrats there were special wrongdoings. It was not forbidden to study the repetition and digression of the supernatural Vedantras in Anadhyaya. The practice was to punish the student for violating the rules of Vinay. With the expansion of the syllabus, in addition to Vedas and Vedangas, subjects like literature, philosophy, astrology, grammar and medicine were being studied. Toll school, monasteries and viharas were taught. Kanshi, Taxila, Nalanda, Vikramashila, Valabhi, Odantpuri, Jagaddal, Nadia, Mithila, Prayag, Ayodhya etc. were centers of education. There were famous schools in South India at Annarium, Slautgi, Tirumukkudl, Malakapuram, Thiruvoriyur. The promotion and dissemination of education by the pioneers continued for centuries. Agarhars of Kadipur and Sarvagyanpur were specialized education centers. Ancient education was often personal. Story, acting etc. were the means of education. Teaching was done according to the ability of the student, that is, sutras, karikas and saranas were used to remember the subjects. The anterior and posterior method was very useful to reach the depth of any subject. In order to teach one subject to students of different stages, the concentric method was specially used, Sutra, Vritti, Bhasya, Vyakti were suited to this method. The larger and shorter versions of one book were considered useful for this practice.

The education system of Buddhists and Jains was also similar.

MEDIEVAL EDUCATION

Islamic education began to spread as soon as a Muslim state was established in India. Those who know Persian began to be considered worthy of government work. Hindus started studying Arabic and Persian. According to the personal interest of the emperors and other rulers, education was started on Islamic basis. Mosques were built for the preservation and propagation of Islam, as well as Maktabs, Madrasas and libraries were established. Maktabs were centers of early education and madrasas of higher education. Maktabs were taught religiously. Students memorized parts of the Quran. Hindu children also studied in them.

After getting education in Maktabs, students used to enter madrasas. Religious education was mainly taught here. Along with this, there were studies of history, literature, grammar, logic, mathematics, law etc. The government used to appoint teachers. Somewhere he was also appointed by influential people. Teaching was through Persian. Arabic was a compulsory text subject for Muslims. The hostel was managed in some madrasa. Poor students used to get scholarships. The orphanages were operated. Education was free. Handwritten books were read and studied.

Education was arranged for the princes within the palaces. The knowledge of the state system, military organization, war operations, literature, history, grammar, law etc. was obtained from the home educator. Princesses also got education. The teachers had great respect. He was a scholar and a virtuous person. The relationship between students and teachers was of love and respect. Emphasis was placed on simplicity, virtue, education and religion. There was a tradition of memorizing. Lessons were taught by question, interpretation and examples. There was no exam. Teachers used to get facts about students' qualifications and scholarship in the opportunities received in teaching studies. Penalties were used. Education was also given to earn a living. Delhi, Agra, Bidar, Jaunpur, Malwa were the centers of education. Even in the absence of the patronage of the Muslim rulers, Sanskrit poetry, drama, grammar, books of philosophy and their reading continued to be read.

MODERN CARPET EDUCATION: -

The foundation of modern education in India was laid by the hands of European evangelists and businessmen. He established many schools. Initially, Madras was his field site. Gradually the scope of work began to expand in Bengal as well. In these schools, along with the teaching of Christianity, subjects like history, geography, grammar, mathematics, literature etc. were also taught. The school was closed on Sundays. Many teachers used to teach students in many categories. The teaching time was fixed. Throughout the year, there were many big vacations.

Usually after 150 years, the merchant East India Company started to rule. The company remained indifferent to education for fear of hindering expansion. Nevertheless, with special reason and purpose, the Calcutta Madrasa Company was established in Calcutta in 1791 and the Sanskrit College in Benares in 1792 by Jonathan Duncan. The prejudice of the company began to change in the matter of propaganda too. The company now understood the need to educate the Indians of their state. According to the writ of 1813, it was decided to spend money in education. The supporters of oriental and western education differed on what kind of education should be imparted. The debate continued. Finally, influenced by the logic of Lord Macaulay and the support of Raja Rammohan Roy, in 185 CE, Lord Bentinck decided to study English language and literature and European history, science, etc. and in this order of money approved in the writ of 1813. Be spent Oriental education should go on, but the emphasis should be on studying and teaching English and Western subjects.

Seeing the improvement of the economic condition of the educated Indians in the western way, the public started leaning here. A large number of students started entering English schools because the government announced the policy of appointing English-educated Indians to government posts. Along with the governmental encouragement, English education also received substantial amount of personal support. With the expansion of the English Empire, more employees, physicians, engineers and law-makers were required. Government's attention was towards useful education. Medical, engineering, and law colleges began to be established. Jyotiba Phule opened a school in 18 to improve the condition of women and their education. It was the first school in the country for this work. If the girl could not find a teacher to teach the girls, she did this work for a few days and made her wife Savitri eligible. The upper-class people tried to interrupt their work from the beginning, but as Phule continued to move forward, he pressurized his father and got the husband and wife out of the house, this stopped his work for some time, but Soon they opened three girls' schools one after the other. In 1853, a committee was formed to examine the progress of education to focus on women's education. In 1857, the decision of the committee in Bud's education message was sent to the company. Knowledge of Sanskrit, Arabic and Persian was considered essential. It was proposed to establish industrial schools and universities. Education departments, teacher training, women's education etc. were recommended in the provinces. The independence war broke out in 1857, which hindered the progress of education. In 1858, universities were established in Calcutta, Bombay and Madras.

The Education Commission of India, under the chairmanship of Sir William Wilson Hunter, was appointed in 1872 to examine the questions of education, mainly examining the condition of primary education. The Commission made appropriate suggestions for primary education. It was recommended to shift government effort from secondary education to the organization of primary education. Government secondary schools should not have more than one in each district; The medium of instruction should be English in secondary level. The Commission made recommendations for the improvement of secondary schools and the spread of vocational education. The Commission also threw light on the grant-in-aid system and reform of government education departments, religious education, women education, education of Muslims, etc.

Indian education progressed with the recommendations of the Commission. Number of schools increased. Municipal councils and zilla parishad were formed in the cities and the Education Commission left primary education to them, but it did not benefit much. The condition of primary education could not improve. Government Education Department continued to support secondary education. English was the medium of instruction. Mother tongue got neglected. The number of educational institutions and the educated increased, but the standard of education fell. There was a feeling of need for comprehensive and independent national education among Indians who wanted to progress the country. The freedom-loving Indians and the Indian lovers took up the task of reform. 140 Bal Gangadhar Tilak and his associates established Fergusson College in Poona, Dayanand Anglo Vedic College in Lahore by Arya Samaj in 16 and Central Hindu College in Kanshi in 1897 by Mrs. Anne Besant.

In 1897, Raja Chhatrapati Sahuji Maharaj of the princely state of Kolhapur opened schools and hostels for Dalit and backward castes. This led to the promotion of education in them and the social situation started changing. Initiated to open separate government institutions for all sections of the backward castes society, from 1894 to 1922. This was a unique initiative. In order to educate the castes which had been neglected for centuries, in this initiative special efforts were made for the education of the children of the Dalit-OBCs. He provided financial assistance to the children of deprived and poor households for higher education. The foundation stone of the hostel was laid in Nashik in 1920. The result of Sahu Maharaj's efforts was visible in his rule. When Sahu Ji Maharaj saw that there are sufficient number of untouchable-backward students in the school-colleges of the state, he closed the separate schools and hostels opened for the underprivileged and provided them the facility to study with normal students. | Dr. Bhimrao Ambedkar went abroad to study on the scholarship of the King of Baroda, but due to the scholarship being stopped in the middle, he had to come back to India. When Sahuji Maharaj came to know about this, Maharaj supported him to continue his further studies.

In 1901 Lord Curzon held a secret education conference in Shimla in which 152 proposals were approved. No Indian was called in this and neither the decisions of the conference were published. The Indians considered it a conspiracy against them. Curzon could not get the support of Indians. Curzon approved a reasonable amount for the advancement of primary education. Arranged for training of teachers and improved education grant method and curriculum. Curzon opined that primary education should be imparted through mother tongue only. Control of both the government education department and the university on secondary schools was considered necessary. Financial assistance was increased. The course has been improved. Curzon did not think it appropriate to withdraw the government in the field of secondary education, it was necessary to increase direct government influence. Therefore, he wanted to increase the number of government schools. Lord Curzon appointed University Commission of India in 1902 for the advancement of university and higher education. The Commission made suggestions while considering subjects like syllabus, examination, teaching, education of colleges, restructuring of universities, etc. There was no Indian in this commission either. The indignation increased among Indians on this. They protested. In 1904, the Indian University Law was enacted. With the establishment of the Department of Archeology, the contents of the history of ancient India began to be preserved. At the time of the Swadeshi movement of 1905, the Ethnic Education Council was established in Calcutta and the National College was established, whose first principal was Arvind Ghosh. Bengal Technical Institute was also established.

In 1911, Gopal Krishan Gokhale tried to make primary education free and compulsory. They could not succeed due to the opposition of the British government and its supporters. In 1913, the Government of India envisaged several changes in education policy. But nothing could happen due to the First World War. The Calcutta University Commission was appointed at the end of the First World War. The commission made recommendations on training of teachers, establishment of intermediate colleges, arrangement of colleges in Calcutta, paid vice-chancellors, examinations, Muslim education, female education, vocational and industrial education etc. Primary education laws were made in the provinces of Bombay, Bengal, Bihar, Assam etc. The secondary sector also progressed. Number of students increased. Commerce and business were placed in the secondary course. The school living certificate exam lasted. The importance of English increased. A large number of teachers started training.

By 1918 there were five universities in India. Now seven new universities were established. Banaras Hindu and Mysore were established in 1918, Patna in 1918, Osmania in 1918, Aligarh in 1920 and Lucknow and Dhaka Universities in 1921. Non-cooperation movement brought strength and momentum in the progress of national education. National institutions like Bihar Vidyapeeth, Kashi Vidyapeeth, Gaudiya Vidyayayatan, Tilak Vidyapeeth, Gujarat Vidyapeeth, Jamia Millia Islamia etc. were established. Efforts were made to bring practicality in education.

In 1921, according to the new governance reform law, education in all the provinces came under the authority of Indian ministers. But due to lack of government support, it was not possible to implement useful schemes. The attempt to make primary education compulsory in almost all the provinces was in vain. Secondary education continued to expand but due to lack of proper organization their problems could not be solved. After finishing education, students would not be able to do anything. Universities were established in Delhi (1922), Nagpur (1923), Agra (1924), Andhra (1924) and Annamalai (1926). The universities of Bombay, Patna, Calcutta, Punjab, Madras and Allahabad were reorganized. The number of colleges increased. There was progress in vocational education, female education, education of Muslims, education of Harijans, and education of criminals.

Simon Commission was appointed for the next regime reform. The Hartang Committee was an essential part of this commission. Its job was to investigate the problems of Indian education. In the report, the committee discussed the merits and demerits of the prevailing education from 1914 to 1926 and gave instructions for improvement.

A committee was formed to solve the problem of unemployment in the United States between 1930 and 1935. Emphasis was laid on practical education. One of the two years of intermediate studies should be done with the school, so that the studies are 11 years old. The remaining one year b. a. B. a. The course should be made for three years. Secondary should have two parts of six years - three years of lower secondary and three years of higher secondary. In the last three years, along with general education, agriculture, crafts, business should be taught. These recommendations of the committee were not implemented.

A scheme of education was prepared in 1936, which became famous in 1936 in the name of basic education. Education of children of seven to 11 years should be compulsory. Education should be in mother tongue. Go to Indian education. Charkha, loom, agriculture, wood work should be the center of education, on the basis of which literature, geography, history, mathematics should be studied. Changes were made in 1985 and the name of the change scheme was 'Nai Talim'. It had four parts - (1) pre-basic, (2) basic, (3) higher basic and (4) adult education. The Hindustani Talimi Sangh (Indian Educational Association) was left operational.

At the end of World War II, the Sergeant Plan was created in 1975. In which it was recommended that there should be compulsory education for boys and girls of the age of six to 14 years. Junior Basic School, Senior Basic School, Literary High School and Vocational High School should be studied from the age of 11 to the age of 14 years. After this, enter university. The degree course is three years old. Intermediate class should be abolished. Nursery schools for those under five years of age. Medium should be the mother tongue.

British education policy for India: -

Missionaries entered education in the British period, in this period important education documents include Macaulay's Declaration 1835, Wood's Declaration 1858, Hunter Commission 172. In this period, the purpose of education was made keeping in mind the governance interests of the British state.

It is often called the education system of Macaulay. Lord Macaulay was a member of the House of Lords of the British Parliament. After the revolution of 1857, when the rule of India was snatched from the East India Company in 180, under the control of Queen Victoria, the important task was to assign the necessary policies to strengthen the British rule in India. He traveled all over the country.

Western literature where learning & knowledge is for knowing the external world . Indian literature stresses on self knowledge and knowledge the self . In Gita(14.24) it is said that the main aim of life is to be Gunatit . Swastha has the basic characteristics of self directed or inner –directed process or self referral .

In the Taitriya Upnishad (1.6) the process of self –learning and teaching have been emphasized. If one want to raise his self stature, or if one wants to contribute to the knowledge and welfare of the society , on should not neglect self –study and teaching .

Ultimately all the activities must be aimed at creating a healthy society for the harmonious living.

Enlightenment of family is a pillar of child education

ENLIGHTENMENT

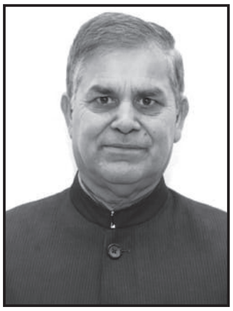

Shri Desh Raj Sharma
General Secretary
North Zone Vidya Bharti
Adminstrator
Educationist &
Educational Thinker

Contact
Mob. 9478000698

> ***'There is no school equal to a decent home and no teachers equal to a virtuous parent'***
>
> **-Mahatma Gandhi**

Communication consistency and collaboration amongst parents and schools is the foundation on which rests the building of a strong holistic development of a child. Inclusion and involvement of parents in the educational process means that teachers and parents share equal responsibility to teach students and work together to achieve educational goals. Their association is often considered a pathway by which schools enhance the learning outcomes of children. Having said that the involvement of parents in the educational process has been on a steady decline since the past few years.

An insight into enlightenment: As per the dictionary, the state of having knowledge or understanding or the act of giving someone knowledge or understanding is known as enlightenment. In the education system, knowledge and understanding of the challenges, surrounding and the skill or interest of their ward play the important role.

Parental role in shaping a child's personality: Parents play an important role in educating the child. Let your child discover a friend, philosopher and a guide in you. Making this happen, he/she will consider you to be his/her strength. Let them realize that for all problems they have this door always open welcoming them with love. Typically, parents' involvement pertains to their behaviour at home and school settings, which is meant to support their children's educational progress. Measures of parent involvement commonly include the quality and frequency of communication with teachers as well as participation in school functions and activities. Parent involvement also characterizes parents' values and attitudes regarding education and the aspirations they hold for their children. Although values and attitudes may not directly influence academic outcomes, they may enhance academic achievement indirectly by promoting children's motivation and persistence in challenging educational tasks.

The role of the parents can be divided into three main categories:

(1) In showing support for their child's education.

(2) In making their home a better place for learning.

(3) In helping with homework to provide a proper environment and involve them in daily activities at home and society.

Importance of parent involvement: Over the years, various studies have documented the importance of parent involvement for young children. Parent involvement is conceptualized as a product of the interaction between the influences of school and home settings by providing continuity between the two environments. For example, if parents are aware of a teacher's instructional goals, they may provide resources and support for those learning aims at home. Similarly, in terms of social development, parent involvement may facilitate the development of consistent disciplinary approaches across home and school.

Parent involvement may also enhance children's behaviour at home and in the classroom as parents and teachers work together to enhance social functioning and address problem behaviours.

Family as a child's primary social group: Family is a part of society, a unit. Parent families are closed ones among families. The parent who accompanies them to the school is a parent family for the education of their child. It is necessary to have some clarity in the mind of such a parent. Lack of clarity creates barriers in the education of the student. In present times, the challenge of the complexities of the education system is challenged. Where to start it is also a topic to consider in itself. But it seems to me that guardian's awakening is an important part of its bounty. Parent enlightenment means how to get the contribution of parents in the all-round development of children, that is panchakoshaas per the Upanishad and Vedant. Today, almost all the parents want to provide a good education but they do not have the time to discuss their wards with the teachers in the school. In such a situation, there is a greater expectation from the teachers.

Family aura has a major impact on children. They first learn nature, culture, ethics, social behavior from home. Parents should watch closely on the daily routine of children and inspire them to do all eco friendly activities at home so that they will be able to create a beautiful personality of children. Apart from this, we should also make them aware of human values so that they are sensitive towards any living being.

A teacher affects eternity (the role of a teacher): The role of a teacher has changed massively with the introduction of digital media. As a teacher, one must bring out the best in students and inspire them to strive for greatness. If possible, a teacher should ideally take the initiative to contact the home of a child, at least once or twice in a year to study the family environment of the student and also discuss the joys and sorrows of his/her family. We are living in a world of digital technology, it will be more beneficial, if video clips and pictures of school activities of some students are sent to parents they will know more about the school. Profession wise data bank of the parents should be maintained and those who have specialization like career advice, dance, art, music and sports can be invited in school, so that students can get their benefits. Parent-teacher association must be formed in the school and solutions to the challenges can be solved through healthy discussion in the scheduled meetings.

Measures of parents' involvement: This commonly includes the quality and frequency of communication with teachers as well as participation in school functions and activities. These kind of programs not only encourage parents' involvement but also facilitate the abhibhavak-acharya bond more stronger. On the other hand, a teacher should take the initiative to visit the house of a child to understand the environment of their home. We know that the learning atmosphere is the pivot in the field of an education learning environment of school and home includes the opportunities your child has to play and interact with books, objects and everyday experiences to help them make sense of their world. Parents can be invited to conferences, workshops as a chief guest or main speaker of the program. In these programs, topics may be discussed like challenges and solutions of present problems and all-round development of the children.

Books as a source to expand the imagination: Books are important because they provide a few things that are key to open up the intelligent society. There should be some reading stuff like books and magazines in every home. They provide a safe place for any intellectual to store his or her thoughts. There should be religious books, novels of famous authors, atlas, dictionary, autobiography of great leaders in every home. A house that has a library in it has a soul. The best thing about books is that they let you travel without moving your feet. Books are the plane and the train and the road . They are the destination and the journey . I do believe something very magical can happen when you read a good book.

Home as a reflection of one's personality: Home decoration plays a vital role in determining the mood of the place. It also has an effect on the mood of the people living in the house. Murals, artifacts, flowers, vases, idols of Gods, home decors can be according to traditional cultural interest.

According to the National Education Policy (NEP) 2020: School complexes will be encouraged to hire local eminent persons or experts as master instructors in various subjects, such as in traditional local arts, vocational crafts, entrepreneurship, agriculture, or any other subject where local expertise exists, to benefit students and help preserve and promote local knowledge and professions.

In collaboration with parents and other key local stakeholders, teachers will also be more involved in the governance of school complexes, including as members of the school management committees.

The school should be a point of celebration and honor for the whole community. the dignity of the school as an institution should be restored and important dates such as the foundation day of the school will be celebrated along with the community and the list of important alumni may be displayed and honored.

School infrastructure could be used to promote social, intellectual and volunteer activities for the community and to promote social cohesion during non-teaching/ schooling hours may be used as a ‘Samajik Chetna Kendra’.

Platform for Enlightenment

Parent Teacher Association (PTA), MatriBharti, Grandparents Association, among others should be formed to involve the parents and their enlightenment. The school can organize Mothers' orientation workshops to train different skills particularly the mothers of children between 0-6 years of age. Home as a School, Abhibhavak Sammelan, Matri Sammelan, Class wise parents meetings, Community Seminars, Sports meets etc are the platform to enlighten the parents. Religious , Traditional, Naitional, Social festivals should be celebrated in school as well as at homes . Parents and teachers must be the part of these festivals.

Some Examples of program

Various programs such as Organic Farming, Atma Nirbhar Parivar / Village/ city, Swadeshi, water and electricity conservation, Home decoration, Save Environment, Information Technology and Social Media are our new friends , Artificial Intelligence, Disasters reasons and solutions, 21st century skills along with children development issues can be the topics to be enlightenment of family. Above said programs will increase the ability of family as well as society and then they will be good citizens.

It is said that a good example is the best gift you can offer to your children. In your absence, your example is present, which means you are present always!

Parents is inmpotant for Education at Home for Child

Parents are their first teachers and they have a key role in shaping up their character. A balance of education at home and school moulds a student’s actual learning. Be a helping hand in their educational journey and travel with them with true inspiration. Parental encouragement had played a crucial role in successful students. Their role is not limited to home but involvement in school activities too.Here are a few ways which parents can adopt to help with their child’s education:

1. Be a role model

Kids would be easily inspired by what their parents do. So it would be good to be a role model in their learning phase.

2. Read together

Doing things together with parents give them a sense of support and confidence. Reading the lessons together is one of the best ways to be close with the child’s learning at school.

3. Oversee child’s activity

It is important to have an eye on the child’s activity at home. Their general habits are closely linked to how they perform in their studies.So give timely advice and correct any abnormal behavior right from the childhood days and inspire them to be good citizens.

4. No over scheduling

It is not a good idea to over schedule them with learning activities at home.

Balancing the time between lessons, play time and rest is important to have a quality student life.

5. Provide pleasant atmosphere

Parents should make sure that the kids are provided with a peaceful and pleasant atmosphere at home. Both father and mother should consider the importance of their study life and give them adequate moral support.

6. Give constructive criticism

If you notice that your kid is not performing well or giving less importance to studies, correct them at the beginning itself. Make them understand what is right and wrong rather than simply blaming them.

Experience is the best teacher !

INSPIRATION

Mrs. Rashmi S Chari
Director Academics & Training
Bharthiya Shiksha Board
Member Educational Research and Innovations Committee

Contact
Mob. 9999981344

Since the NEP2020 has strongly recommended changing classroom pedagogies to inquiry-based, discovery-based, experiential learning, these themes are trending on the training circuit. I often wonder if training is the only way for teachers to get a hang of these new and old pedagogies that surface at regular intervals. Why not try action-research that will give them first -hand feedback into the efficacy of any pedagogy in the classroom through a process of problem-solving that integrates research, experience, observation, analysis, and experimentation into their own practices. This will also give them deep insights into the fundamental questions, how does learning happen and what is the role of experience in the learning process.

Pursuit of 'Learning'

To make an objective inquiry into the learning process, it would be worthwhile for teachers to mentally distance themselves from their school, classroom, lesson plans, exams, academic calendar, syllabi, and routine activities and pursue this question by simply observing their own learning and learnability. My experiences have informed me that I learn best when I do something practically. This process puts me in the driver's seat as I plan the task by figuring out the materials, process and time required to accomplish it. The end product is of course a big revelation as it tells me what went right and what did not and what I could have done differently for better outcomes. In addition to this, watching others perform a similar task and listening to tales of their own adventures and misadventures adds greater insights to my understanding and motivates me to experiment again, more confident, and surer of the results this time round! According to **David Kolb**'s Experiential Learning Theory (ELT) this is exactly how learning happens, irrespective of when and where.

Value Experience

Kolb was greatly influenced by educational philosophies of Dewey and Piaget. Being an eternal pragmatist **John Dewey**, believed that human beings learnt through a hands-on experience i.e. 'learning by doing' and that learning is impacted by the 'quality of experiences'. **Jean Piaget** too in his Theory of Cognitive Development said that learning begins with concrete experiences and grows into abstract understandings. Children learn best when they play an active role in the learning process, acting like little scientists performing experiments and making observations to make sense of the task.

Some more educational philosophies worth considering in pursuit of our understanding of experiential learning are by- **Sri Aurobindo** who believed that learning best happens in free and creative environment that aids and allows development of child's interest, creativity, mental, moral, and aesthetic sense. **Mahatma Gandhi**, another pragmatist, writes in his book Nai Talim that 'work and knowledge should go together'. Children should be taught craft (work) not mechanically but scientifically (with reason and evidence) as it would develop the intellect of the child. The most revealing statement of Gandhi's educational philosophy is when he says, 'the brain must be educated through the hand.' J Krishnamurthy squarely puts the onus of learning on the teacher's ability to plan the right kind of enquiry. He declares that since the purpose of learning is to develop a questioning mind and spirit, teacher has to free himself from mindless repetition of content and practices. He astutely concludes that most times the problem thus is not the child but the educator, for what he is, that he imparts!

I - Do Theory

In 1984 through his *I -Do Theory* **David Kolb** explained the learning process in four stages - action, reflection, conceptualisation, and experimentation. Kolb's theory is truly learner centred as for him it is the learner who drives and develops the learning process. Teacher for him is the facilitator of learning through efficient planning and monitoring. Whether planning for an online or off-line, the teacher must keep in mind these cardinal rules of experiential learning.

- Learning is process and not a product or outcome.
- The learning process is grounded in experience and reflection.
- The learning process is holistic and integrated as it involves feeling, watching, thinking, and doing.
- Learning is not complete without problem solving and decision-making processes that require learner to use higher order thinking skills.
- Learning involves transactions between the person and the environment (surroundings) therefore learning must be adapted to the real-life context of the learner.
- Interactions between personal knowledge and social knowledge (peer- discussions, collaborations, and review) help learners conceptualise or construct knowledge.

In-Class Experience

Four stages of experiential learning are explained in detail here for the educators to understand the role of each stage on the learning continuum because learners acquire critical knowledge/ insights from each stage. Depending upon the situation the learners may enter the learning cycle at any stage, however, they will best learn the new task/concept if they undergo all the four stages.

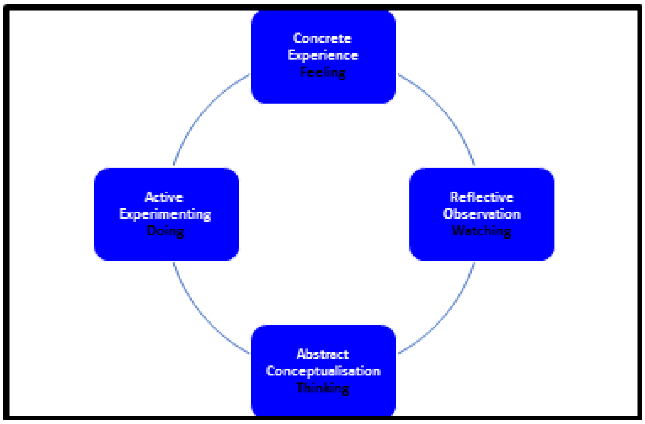

1. Concrete Experience – Teacher plans an activity for introduction of the theme through an interesting fun experience requiring learners to perform, demonstrate, express, or enact freely using his imagination, emotions, and senses. This is the 'feeling stage' where learners' experiences enable them to get a feel of the concept they are about to learn. e.g. to learn about flying, learners would be asked to imitate a flying thing of their choice such as an insect, bird, or plane and also express how they felt in that role. Similarly, generic themes across curriculum such as happiness, nature, poverty, illiteracy or pollution could be experienced and expressed realistically by learners. Mathematical concepts on the other hand could be experienced and expressed by learners using manipulatives or other materials. This concrete experience sets the stage for learning by creating readiness in the learners.
2. Reflective Observation- This is the 'watching stage' when learners reflect on their experience before making any judgement about it. This stage also gives them the opportunity to observe peer-performances that broaden their perspective and gives them enough fodder to mull over the experience they have recently undergone. They imbibe a lot of new information simply through mindful and focussed observation and sharing of these reflections. This information processing puts learners on the process continuum that leads them eventually to active experimentation.
3. Abstract Conceptualisation: This is the thinking stage. While during reflective observation they had focused on thinking about previous experiences and developing observations about them, abstract conceptualization takes the reflective process a step forward by making learners focus on developing those observations into a set of generalisations that form the core of a concept or theory. Teacher involves students in researching the inquiry questions by information gathering, sorting, classifying, defining new terminology, analysing processes, group discussions, presentations, peer-review, and feedback. All these strategies aid conceptualisation or construction of knowledge.

4. Active Experimentation – The fourth stage is the doing stage where the teacher gives learners an opportunity to test their ideas through active experimentation. Teachers create opportunities of active experimentation for learners by requiring them to construct, model, demonstrate, write, compose, illustrate, develop a code, perform or problem-solve. They apply their ideas mindfully to these situations and attempt problem solving, decision making or devising innovations. This helps them eventually connect the dots and arrive at a holistic understanding of the concept being learnt.

When planned thoughtfully all these stages happen seamlessly on the learning continuum with one stage leading the learner to another quite effortlessly.

The USP

Experiential learning requires all learners to use their head, heart, and hand in the learning process. Therefore, the experiences range from emotional, concrete, kinaesthetic to intellectual. Learning process becomes fun and collaborative albeit challenging. Psychologically learners are in an optimistic and confident space as they contribute, collaborate, and participate actively in the learning process. They may stress over the outcomes of their experimentation; however, they are confident of success as they know that they are on the learning curve. The 'power of yet' has surely and certainly driven out the fear of failure!

In conclusion

The concept of experiential learning is universal and time-tested. In 6th century BCE after retiring from the Emperors court, the Chinese philosopher Confucius established his own school. He used the experiential approach to not only teach rudimentary subjects but also for developing character and humanity in all his learners, rich and poor alike. Although experiential learning has been validated repeatedly over centuries by eminent educationists however Confucius has immortalised it in these words ***- I hear I forget; I see I remember; I do I understand. - Confucius***

Under the NEP 2020, the focus areas of the reforms seek to cultivate '21st-century skills' among students, including critical thinking, problem-solving, creativity and digital literacy.The policy has a balanced and inclusive outlook, with a diminished line of difference between arts and STEM courses, in addition to blended, multi-disciplinary learning. It recognises the need to bridge the gap in education through technology and digitisation. From universal early childhood care to the introduction of a 5+3+3+4 education framework and 360-degree assessments, the policy is set to revitalise the education system in order to bring out the unique capabilities of each student. One of the highlights of the NEP has been the proposal to integrate vocational education in middle and secondary schools. The policy also proposes to establish skill labs in collaboration with local polytechnics, where courses will be imparted in online mode. The confluence of education and skill development will not only help in the well-rounded development of students, but also strengthen the core tenets of the Skill India Mission. The use of technology will ensure a qualitative delivery to a much wider range of audience. NEP dismantles the rigid distinction between arts, commerce, and science. Thanks to the policy, the choice of taking up history with chemistry will now be possible for students. This brings in the much-needed fluidity for students to hone their skills and cognitive abilities. Coupled with a hybrid model of learning, education will become more participative and broad-based. The student will now be able to mix and match subjects like chemistry with history and music!

Urgency of Reforms in United Nations Organization

OPINION

Shri Rajendra Kumar Shastri
Additional Session's Judge (Retd.)
Ex. CBI Judge
Thinker, Writer

Contact
Mob. 9910384740

World war second left devastating effects on most of nations. Apart from taking lives of millions of young citizens, it ruined world economy completely. Anxious to prevent further blood bath and also to bring political stability, leaders of world, got together about 75 years ago, to form union called UNO. It came into being on 24.10.1945 having headquarter at San Francisco, California, US. UNO is established on the foundations of league of nations, to save this planet from scourge of wars. Frequent wars imposed by expansionist dictators had ravaged weaker nations. Despite these efforts by leaders of world, Hitler, dictator of Germany conquered Czechoslovakia, Austria & Mynmar, League of nations was a very weak organization. It could not save these nations and finally with fall of Poland, it collapsed.

UNO has 6 principal organs – General Assembly, Security Council, Economic and Social Council, Trusteeship Council, International Court of Justice and Secretariat.

As per UN charter, its objectives are:-

i) to prevent the successive generations from war.

ii) to maintain international peace and security.

iii) to take collective actions for such purposes.

iv) to develop friendly relations among all nations, based on principles of equality and self determination.

v) to be able to act as a centre for harmonizing the action of nations for a common end.

It is primary responsibility of security council, to maintain international peace and security. It implements its decisions first through pacific means and if fails then through forceful actions. Decisions taken in security council are binding upon all nations. Security council has 15 members, out of which following 5 are permanent:- USA, France, United Kingdom, Russia and China. Other 10 are elected for 2 years. Permanent members have veto powers. No resolution is passed unless agreed upon by each of these 5 permanant members.

Experience shows that like League of Nations, UNO has not been able either to prevent wars or to maintain international peace and security, which were its prime objectives. Military COUP in Mynmar is latest example of UNO failure. On 01.02.2021 Military Junta under Min Aung Hlaing suddenly took over control of administration by overthrowing democratically elected Govt. headed by Aung San Suu Kyi. The latter along with President of country, all Cabinet Ministers, Deputy Ministers, MPs, Chief Ministers of several regions, opposition Politicians, Writers and Activists were put in jail. Aung San Suu Kyi has been charged for breaching emergency covid laws, illegally imparting and using radio and communication devices specially six ICOM devices and a walki talki which were restricted in Mynmar and needed clearance from Military Agencies. She is also blamed for corruption. General elections were held on November 08, 2020, in which National League of Democracy of Aung San Suu Kyi won 83% of available seats, remaining seats were reserved for Military Officers.

The coup was announced from Military-owned Myawaddy TV Station. Military referred 2008 constitution, which permits

Military to impose a national emergency. It is declared that this emergency will remain in force for one year. The military hurriedly seized control of civil administration. Mass demonstrations have been erupted all over the country.

The protesters who represent all sections of society including Govt.-servants constrained to resort to civil disobedience. They met with the might of military, which erected barricades, deployed soldiers in riot gear and stationed snipers on roof tops as well as in streets. Day after day armed forces have escalated their brutal attacks. More than 500 unarmed civilians, who participated in peaceful protest have been killed till writing of this article.

Voices came from all over the world, condemning military brutality. World efforts to condemn these savage acts of Burmese military are marred by China and Russia, who happily came forward to save military junta. Exercising veto power, leaders of China and Russia who have already throttled democracy in their own countries, restrained security council of UNO from imposing any sanction on military rulers of Mynmar.

Military coup in Mynmar is one of several failures of UN. Syrian war, Somali civil war, conflicts in South Sudan, Israel-Palestine, & kirmishes, Rawandan civil war are some other examples, where UN could do nothing, due to veto powers in favour of 5 countries. National interest overweigh merit of matters. Member countries use to cast their vote in favour or against the resolution, as suits to their self interest, even if it is a wrong choice apparently.

Even matters pertaining to poor countries, incapable to serve anyone’s interest are not taken up by these world bodies. For example:- security council was very much prompt to come forward in defence of oil rich Kuwait, when attacked by Saddam Hussain, dictator of Iraq, in 1993, but genocide in poor Rwanda could not attract attention of anyone, despite mass killing of its civilians.

In this way, UN has proved to be a white elephant. It has miserably failed in its objectives. Neither it could prevent wars nor able to establish world peace.

Since 1990 there have been calls from various quarters for reforms in UN, but these remained little clarity as what reforms might mean in practice. India has time and again raise issue of reforms in UN system. Recently Prime Minister Sh. Narender Modi vociferously advocated for reforms in UN particularly in its security council, when he attended meeting of general assembly held virtually.

Group 4 countries (Brazil, Germany, India and Japan) have proposed to enlarge number of seats to 25. They want permanent seats for themselves and two others including South Africa. No African country is permanent member of security council. Proposal of another group called Coffee Club comprising Canada, Italy, Argentina, Pak, Maxico, Newzeland, Spain, Sweden and others is to include 10 more non-permanent members in security council. Creation of semi permanent membership and to impose limitation on powers of permanent members on case to case basis is also their demand.

Five permanent members of security council having veto powers though talk of reforms, but Except France, none is in any mood to allow big changes. They are neither ready to abdicate their veto powers nor want to admit other countries in security council, with such powers.

This is high time that the countries seating on high chairs should realize the need of hour. Demand of world for reforms in UN, particularly formation of security council is very old & jenuine Water is flowing over head. If these five privileged countries do not bow to world demand, UN shall meet the same as like its predecessor. Time may come that some countries which have developed sufficiently and leading the developing nations may think to shun this union, which otherwise serves no purpose except to fulfill self interest of some permanent members of security council.

The UNITED NATION ORGNIZATION was established after World War II with the aim of preventing future wars, succeeding the ineffective League of Nations. On 25 April 1945, 50 governments met in San Francisco for a conference and started drafting the UN Charter, which was adopted on 25 June 1945 and took effect on 24 October 1945, when the UN began operations. Pursuant to the Charter, the organization's objectives include maintaining international peace and security, protecting human rights, delivering humanitarian aid, promoting sustainable development, and upholding international law. At its founding, the UN had 51 member states; with the addition of South Sudan in 2011, membership is now 193, representing almost all of the world's sovereign states.

New Age Learning

OPINION

Dr Madhu ved
Educationist
Ex. Principal
Senior Secondary School

Contact
Mob. 9899211336

Education plays a vital role in the development of our civilization. Since immemorial the method of learning is constantly evolving and still going through numerous changes because of changing times and advancement of technologies. All of us are acquainted with the conventional ways of teaching and learning in which mainly the education was imparted within the boundaries of schools and in four walls classrooms. We all students sat together with our bags full of books and notebooks, teacher teaching the same content using black boards/green boards. Undoubtedly the customary learning through this way has some advantages like social exposure, extra -curricular activities, proper confidence etc and above all the charm of meeting friends and eating lunch before recess , birthday celebrations in the classrooms , waiting for the return gifts and annual programme of the school. But unfortunately this system could not bridge learning gaps.

Foundational deficiency is found among children ability to read. Students do follow simple instructions and they also listen well but speaking and reading skills are a weak link among the junior students. listening and speaking skills are ignored in comparisons with writing skills. Need of the hour in present times is to focus on aptitude, language skills, logical reasoning and developing self-awareness right from the primary wing . Also strong and flexible curriculum must be developed with growth mindset.

The government recently launched NATIONAL INITIATIVE FOR PROFICIENCY in READING WITH UNDERSTANDING and NUMERACY [NIPUN Bharat] which is in sync with NEP2020 whose aim is to ensure the universal acquisition of foundational literacy and numeracy among students by the end of class 111 by 2026 - 2027.

The biggest reason for the poor quality of learning outcomes at the junior level is found in poor understanding of basic mathematics and poor reading of English language. These weak basics travel with the students at elementary, secondary and senior secondary levels too. Consequently resulted in quitting schools even before secondary certification. Poor command over English language also reflected poor grades in other subjects as english being medium .

It is hoped the NIPIN BHARAT initiative can really hit this foundational deficiency and empower students of all private and govt schools. It will be a remarkable step in NEW AGE LEARNING.

As we all are grappling with the pandemic, many students and teachers are turning towards youtube channels for educational content. Several educational content creators found their subscription double or more than double even . As we know that human brain processes IMAGES 60,000 times faster than the text and the 90% 0f information transmitted to the brain is visual. NCERT OFFICIAL,

DIKSHA, TV CHANNELS [educational only] YOUTUBE are being used as a viable knowledge sharing platforms where there is something for every student. It has made learning and teaching fun during this colossal times. Teachers align the learning goals with the videos to make learning more fun and engaging. VOICE, COLOUR, MOVEMENTS, MUSIC etc add to the KNOWLEDGE ESSENCE making it entertaining for the students of all levels.

IN NEW-AGE LEARNING audio and visual together stimulate the brain parallely on the single topic . In our traditional system classrooms were not digital and teachers used only lecture method mostly. Students studied better in school times only and at home the completed written or oral work assigned to them as home tasks. In present times students are switching over to blended learning and flipped classrooms. Self learning is a great tool, a lot of information is just a click away.

It is said" The only person who is educated is the one who has learned how to learn and change".

We are required to use the tools as per our own style. Both print and internet sources can be used as per individual needs. Normally i feel" change the changeable, Accept the unchangeable, AND REMOVE YOURSELF FROM THE UNACCEPTABLE."

Mr. B. P. Khandelwal Ex-Vice President Vidya Bharti Passes away

13 May 2021, Noida. Famous Educational thinker, writer, Educationist Dr. B. P. Khandelwal passes away. He is a noble person has no proud of his digniteries. He born at Naugarh Distt. Sidharth Nagar U.P. . He has many degrees B.com, M.com, LLB at Allahabad University he was a Gold Medlist.

His Glorious achievements as -

- Joined to serve eduaction as Assistant Professor in the University of Allahabad in 1963 at the age of 23.
- Served as Director of Education U.P. for seven years.
- Served as Additional Secretary , Secretary of U.P. board For 7 years; Chairman Board of High School & Intermediate Education, U.P. along with the charge of Director of Education of the state U.P. , the world biggest Board, for 8 years.
- Has served on the National Task Force (Navoday Vidyalayas) for Programme of Action 1992.
- Has been Chairman of CBSE, Delhi for six and a half years; and Twice National President of the Council of School Board of India (COBSE), the all India body of School Boards.
- Served as Director (V.C.) National Instituate of Planning & Administrator (NEPA) now NUEPA, form 1999 for a tenure over five years; headed the organization, unique-alone in Asia Next of HEP, UNESCO, Paris.
- Consultant with the World Bank on a study of secondatry education in India and continue be on the pannel of advisors.
- Has undertaken a project to develop a certificate programme on Early Childhood Certificate for in service training with field trial to train teachers teaching LKG, UKG and class one in schools.
- Has been honoured By COBSE for singular chairmanship of 14 years of two world's & widest school Boards (U.P. & C.B.S.E.) in 2000; Saraswati Ratnabhishek in 2000, award with Life 'Achivement in education' 2001 and honored in 2004 with Life time Excellence achievement award.
- On the International Advisory Editorial Board of Asia Pacific Journal of Teacher Education & Development, the Institute of Education HongKong.
- Completed a study on Code of Ethics for teachers & Educational Administrators in South East Asian Countries, for HEP-UNSECO, Paris.
- Published work-two books (Co-authored) on Economics and school based evaluation, over three dozen papers and many more articles on different aspects of elementary, secondary & higher education. Also Value education, Vocational education, Examination & evaluation. Vice President of Vidya Bharti A.B.S.S. 2010 to 2016. Vidya Bharti family pay homage .

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान

त्रिदिवसीय अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक कार्यशाला सम्पन्न

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से भारत की शिक्षा को भविष्य में एक नई दिशा मिलेगी। अपना देश प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी बने, वर्तमान के बालक कल के भारत के श्रेष्ठ नागरिक बन विश्व को नेतृत्व प्रदान करें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सम्मिलित विद्यालयीन शिक्षा से सम्बन्धित अध्याय 1 से 4 का अध्ययन कर, उसमें वर्णित विषयों व उसके क्रियान्वयन हेतु दिनांक 6 से 8 जुलाई 2021 में त्रिदिवसीय अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक कार्यशाला गोवर्धन लाल त्रेहण सरस्वती बाल मंदिर वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ।

इस कार्यशाला में 11 क्षेत्रों से चयनित 67 प्रतिभागी व 8 अखिल भारतीय पदाधिकारी सम्मिलित हुए। कुल 15 सत्रों में 14 विषय विषय विशेषज्ञों द्वारा 12 विषयों पर सामूहिक सत्र हुए। अलग-अलग समूहों में भी अपने-अपने विषयों को प्रतिभागियों के समक्ष रखा गया साथ ही 23 विषयों पर 33 प्रतिभागियों के द्वारा बनाकर लाई गई पी.पी.टी. के माध्यम से भी चर्चा की गई।

दिनांक 6 जुलाई 2021 को उद्घाटन सत्र में एनसीईआरटी के निदेशक प्रो. श्रीधर श्रीवास्तव व प्रो. ज्योत्स्ना तिवारी के द्वारा Acquaintance with new terminology in NEP 2020 विषय को प्रस्तुत किया गया। प्रोफेसर श्रीवास्तव ने सुझाया कि शिक्षा जगत् में जो नए शब्द, विचार आ रहे हैं शुद्ध अर्थ के साथ हमारे प्रत्येक आचार्य तक पहुँचें ऐसा प्रयास होना चाहिए।

इसी दिन दूसरे सत्र में श्री अवनीश भटनागर, अखिल भारतीय मंत्री विद्या भारती ने भारतीय शिक्षा दर्शन और मनोविज्ञान विषय पर प्रस्तुति दी। इस गम्भीर विषय की पूर्व तैयारी हेतु सम्बन्धित आलेख सभी प्रतिभागियों को कार्यशाला से पूर्व ईमेल पर भेजे गए थे ताकि विषय को आसानी से समझा जा सके।

तीसरे सत्र के पहले भाग में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार के निदेशक डॉ. रजनीश कुमार ने National Digital Education Architecture विषय पर चर्चा की। भारत सरकार द्वारा बहुत ही जल्द लागू होने वाली इस योजना के महत्त्व को समझाया और बताया कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार NDEAR के रूप एक नीति ला रही है जिसमें एक Open Source Digital Super Market जैसा शिक्षा जगत् से सम्बन्धित सभी जानकारी एक जगह उपलब्ध रहेगा, ऐसा एक प्लेफार्म होगा, जहाँ पर All Based progress card, Assessment, Accredition, Affiliations, Teachers engagement, Student Welfare, Teachers Training जैसे विविध कार्य हेतु सुविधा प्राप्त होगी। यह प्लेफार्म केन्द्र व राज्यों द्वारा निजी व सरकारी शिक्षकों व छात्रों के लिए open रहेगा। यहाँ Create, Innovate and share की भावना से कार्य होगा। इससे दूर-दराज के क्षेत्र, गांव, नगर व महानगर सभी को समान रूप से विश्वस्तरीय सुविधाएँ प्राप्त हो सकेंगी।

इसी सत्र के दूसरे भाग में डॉ. टी. विजय कुमार (NIRDPR) ने शिक्षा मंत्रालय की योजना National Mentoring Mission के महत्त्व को बताते हुए अब तक हुए कार्य की जानकारी दी। उन्होंने बताया कि हमें अपने शिक्षकों का सतत प्रशिक्षण तो करना ही है साथ ही आस-पास के 8-10 शिक्षकों को साथ जोड़ने से उनके अनुभव व समझ को साझा करने से इसका लाभ लगातार एक दूसरे को मिलता रहेगा।

तृतीय सत्र में डॉ. पुष्पकृत गुप्ता, (पंजाब विश्वविद्यालय, जालंधर) ने विषय How to prepare academic and pedagogocal teachers training से सम्बन्धित Modules पर सामूहिक सत्र में चर्चा की। उन्होंने बताया यह सत्र शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। किसी भी विषय को रखने से पूर्व उसकी तैयारी व सत्र की पूर्व योजना बनाने से, प्रतिभागियों को ध्यान में रखते हुए सत्र के दौरान करायी जाने वाली गतिविधियों से विषय की स्पष्टता रहती है।

दिनांक 7 जुलाई 2021 को प्रथम सत्र में एनसीईआटी से विषय विशेषज्ञ के रूप में श्रीमती ज्योत्स्ना तिवारी ने 'Toy Based Learning and Locally Contextualized & TLM' विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। उन्होंने विद्यार्थियों की पढ़ाई को आनन्ददायक बनाने हेतु खिलौनों के महत्त्व व स्थानीय खिलौनों के निर्माण व शैक्षिक गतिविधियों में उनकी उपयोगिता पर चर्चा की।

इसी दिन द्वितीय सत्र में एनसीईआरटी के डॉ. सुखविन्दर जी एवं डॉ. सत्यभूषण जी ने संयुक्त रूप से New Evaluation & Assessment Procedure as per NEP 2020 के परिपेक्ष्य में बताया कि Assessment is an integaral part of learning अब शिक्षा जगत् में Summative Assessment से Formative Assessment की ओर हम अग्रसर हैं। उन्होंने NISTHA पर उपलब्ध School Based Assessment (SBA) विषय के Modules के विषय को स्पष्टता से समझाया। साथ ही Assessment of Learning, Assessment as Learning, Assessment for Learnig के अर्थ एवं महत्त्व को समझाया। वर्तमान समय में School Based Assessment के महत्त्वपूर्ण विषय को समझे बिना एवं कक्षा-कक्ष

में सिखाने के साथ-साथ उपयोग किए बिना समग्र विकास नहीं हो सकता इसलिए इस विषय को समझना, सीखना व सिखाना आवश्यक है।

तृतीय सत्र में हैदराबाद से आए प्रोफेसर एन. उपेन्द्र रेड्डी ने National Professional Standards for Teachers (NPST) के विषय में बताते हुए कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेखित इस योजना में देश भर में सरकारी व निजी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की योग्यता, Skill, Attitude व विषय ज्ञान को NPST के आधार पर एक निश्चित समय अंतराल पर मापा जाएगा। इस हेतु विद्या भारती को अपने आचार्यों के प्रशिक्षण व प्रबोधन पर कार्य करना होगा।

इसी दिन चतुर्थ सत्र में मानक परिषद् के अखिल भारतीय संयोजक श्री राकेश शर्मा ने Role of Manak Parishad & E-Pathashala विषय के अन्तर्गत NEP में वर्णित Accreditation, Use of ICT, E-Learning आदि बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए SESQ के महत्त्व को व E-Pathshala द्वारा किए जा रहे शैक्षिक प्रयासों व प्रशिक्षणों के विषय में बताया।

अंतिम दो सत्रों में तीन स्थानों पर प्रतिभागियों द्वारा उन्हें पूर्व में दिए गए विषयों पर पीपीटी के माध्यम से अपने-अपने विषय को रखने का अवसर दिया गया। दी गई प्रस्तुतियों का आकलन भी देखने वाले प्रतिभागियों के द्वारा किया गया। इन तीनों स्थानों पर अखिल भारतीय अधिकारियों यथा अखिल भारतीय सह संगठन मंत्री श्री यतीन्द्र जी शर्मा, अखिल भारतीय महामंत्री श्रीराम आरावकर व अखिल भारतीय मंत्री श्री शिवकुमार जी के द्वारा प्रस्तुतियों के बाद मागदर्शन मिला।

तृतीय दिन दिनांक 8 जुलाई 2012 को प्रथम सत्र में सुश्री आशाबेन थानकी (अखिल भारतीय संयोजक, शिशु वाटिका) का वर्चुअल मार्गदर्शन Bhartiya Concept of Foundational Literacy & Numeracy पर प्राप्त हुआ। सभी शैक्षिक सर्वेक्षणों के अनुसार School Drop-outs का सबसे बड़ा कारण प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को भाषा लिखना, पढ़ना व बोलना नहीं आना व अंकों का ज्ञान, जोड़-घटाव, गुणा-भाग, गणितीय सोच का आभाव ही है। इस समस्या का समाधान पहले 5 वर्षों की शिक्षा में भाषा व गणित सिखाने की भारतीय विधियों में छुपा हुआ है। शिशु वाटिका के शिक्षकों का प्रशिक्षण इन विषयों पर कैसे हो इस सत्र में बताया गया।

द्वितीय सत्र में डॉ. विश्वजीत साहा, निदेशक स्कील एजूकेशन एण्ड ट्रेनिंग, सीबीएसई ने चर्चा करते हुए सी. बी. एस. ई. के स्किल एजूकेशन के प्रयासों तथा कक्षा 6, 7, 8 में वोकेशनल एक्सपोजर किन विषयों पर तथा कैसे हो ? इस हेतु सीबीएसई के पोर्टल पर उपलब्ध Modules को कैसे विद्यालय स्तर पर आसानी से डाउनलोड किया जा सकेगा इस संबंध में बताया। उन्होंने कहा कि वोकेशनल एवं स्किल एजूकेशन का 10 दिवसीय प्रशिक्षण बच्चों को किस प्रकार प्रदान करना है ? इससे संबंधित विषय को सहजता से स्पष्ट किया।

अंतिम सत्र में 'Experiential Learning' विषय पर अनुराग त्रिपाठी, सचिव, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली का उद्बोधन हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं NCF को आधार बनाते हुए बताया कि विद्या भारती अपने शिक्षकों को ECCE, Experiential Learning, Art Integration, Joyful Learning, Sports Integration, Pedagogy, Assessment आदि विषयों पर प्रशिक्षण दे सकती है। आधुनिक पाठ योजनाओं के द्वारा Experiential Learning के अनुरूप हमें किस प्रकार Soft Skills, 21st Centuary Skills एवं Values का अभ्यास बच्चे को करा सकते हैं उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा।

समापन सत्र में विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान के अध्यक्ष श्री डी. रामकृष्ण राव जी का मार्गदर्शन Training Management System in Vidya Bharti विषय प्राप्त हुआ। उन्होंने बताया कि विद्या भारती को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप शिक्षा जगत के नए विषयों, संकल्पनाओं, तकनीकी कुशलताओं के आधार पर अपने शिक्षकों को प्रशिक्षित करने हेतु 100 पर एक के अनुपात में मास्टर्स ट्रेनर्स चाहिए। उन मास्टर ट्रेनर्स को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था हेतु यहाँ उपस्थित 67 श्रेष्ठ मास्टर ट्रेनर्स के लिए यह कार्यशाला आयोजित की गई है। यहाँ से जाकर देश भर के सभी क्षेत्रों व प्रांतों में स्रोत व्यक्तियों का प्रशिक्षण करेंगें। इसे आगे विद्यालय स्तर पर भी शिक्षकों को नए विषयों से अवगत कराते हुए प्रशिक्षण करायेंगे। अपने परम्परागत विषयों के साथ विद्या भारती अगले एक वर्ष में अपने सभी शिक्षकों का प्रशिक्षण करवा लेगी। प्रांतों में यह प्रशिक्षण योजना संकुल स्तर तक रहेगी। मा. अध्यक्ष जी ने बताया कि प्रत्येक प्रांत में एक स्थायी प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने की योजना है जिससे Continuous Professional Development (CPD) अर्थात् प्रशिक्षण का कार्य सतत चलता रहे।

कार्यशाला के अंत व्यवस्था में लगे हुए सभी बंधु व भगिनियों तथा विद्यालय परिवार की सुरुचिपूर्ण सुपाच्य भोजन व्यवस्था, सुव्यवस्थित आयोजन के लिए महामंत्री श्रीराम आरावकर जी का धन्यवाद ज्ञापन हुआ।

विद्या भारती शिशु वाटिका पद्धति की उल्लेखनीय उपलब्धि

विद्या भारती पूर्वी उ.प्र. शिशु वाटिका विभाग द्वारा उत्तर प्रदेश के सरकारी आँगनवाड़ी कार्यकर्त्रियों का प्रशिक्षण

लखनऊ, दिनांक 6 से 8 अगस्त 2021 तक उत्तर प्रदेश सरकार संचालित आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में प्रशिक्षण विद्या भारती पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र के शिशु वाटिका विभाग द्वारा दिया गया। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मा.श्रीमती आनंदीबेन पटेल ने अपने सम्बोधन में कहा ''तीन, चार व पांच तथा 6 वर्ष के आयु तक के बच्चों की शिक्षा आँगनवाड़ी का भाग है। स्वस्थ व संस्कारवान बच्चों के निर्माण के लिए कुछ नए प्रयोग करने हेतु ऐसे पाठ्यक्रमों का सृजन करने की आवश्यकता है जिसके माध्यम से नन्हें मुन्नों को संस्कारित शिक्षा दी जाए। बच्चों को सात वर्ष तक जो सिखाया व पढ़ाया जाता है, उसका 80 फीसदी उनकी आदत में आ जाता है। इसलिए आँगनवाड़ी की शिक्षा व प्रारम्भिक शिक्षा अतिमहत्त्वपूर्ण है। प्रदेश की महिला एवं बाल विकास मंत्री की स्वाति सिंह ने बताया कि इस प्रदेश में 1,88,982 आँगनवाड़ी केन्द्र है जहाँ 41 लाख से अधिक बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान के अखिल भारतीय मंत्री मा.शिवकुमार जी ने उद्बोधन में भारतीय सनातन परम्परा के संबंध में कहा ''हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही सोलह संस्कारों का वर्णन है जो वैज्ञानिक रूप में जीवन की रचना के विकास के आयाम हैं। शैशवकाल से ही बच्चे का भावनात्मक विकास शुरू होता है जिसमें माँ की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस अवस्था में बच्चों के अंदर शिक्षा व संस्कार के माध्यम से जैसा बीजारोपण किया जाएगा वैसे ही उनके जीवन का आधार होगा। बच्चा अनुसरण से सीखता है और उसके अंदर जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती हैं। बच्चों की जिज्ञासाओं का समाधान होना ही चाहिए, इससे बच्चों की बुद्धि प्रखर होती है वे मेधावी बनते हैं।''

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान के अ.भा.सह संगठन मंत्री श्री यतीन्द्र कुमार शर्मा जी ने कहा ''शिक्षक ही बच्चों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण का कार्य करता है। ऐसे में बच्चों की शिक्षा को लेकर उनकी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। शिक्षा बाजारीकरण से कैसे मुक्त हो, इसको लेकर विद्या भारती कार्य कर रही है। भारतीय विचार को आधार बनाकर पाठ्यक्रम का निर्माण करेंगे तो श्रेष्ठ भारत बनेगा। बच्चों को बस्ते के बोझ से मुक्त कैसे किया जाए, इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।'' इस कार्यक्रम में 322 आंगनवाड़ी कार्यकत्रियों व ऊपर के अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया गया।

इस कार्यक्रम में शिशु शिक्षा डॉट इन एप व आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की शिक्षा हेतु प्रशिक्षण मार्गदर्शिका का विमोचन किया गया। इसमें जिला शिक्षा पदाधिकारी समेत अनेक प्रशिक्षण देने वाले कार्यकर्ता भाग लिए। अ.भा.बालिका शिक्षा प्रमुख सुश्री बहन रेखाचुड़ासमा व क्षेत्रीय संगठनमंत्री श्री हेमचन्द्र जी का उल्लेखनीय योगदान रहा।

इससे पहले प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रारम्भ वाराणसी में विद्या भारती पूर्वी उ.प्र.क्षेत्र के शिशु वाटिका विभाग द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार के आँगनवाड़ी कार्यकर्त्रियों के विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित तीन वर्ष से पाँच वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा के लिए ईसीसीई के अन्तर्गत शिशु अवस्था के बच्चों की शिक्षा देने के तरीके सिखने के लिए 236 आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, 77 सुपरवाइजरों, 7 सी.डी.पी.ओं.को जिला शिक्षा अधिकारी, जिला विद्यालय निरीक्षक, बेसिक शिक्षा अधिकारी काशी व मुख्य विकास अधिकारी काशी की उपस्थिति में प्रशिक्षण दिया गया। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में यूनीसेफ की टीम विशेष रूप से शिशु वाटिका पद्धति को समझने के लिए उपस्थित थी।

3 से 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए ''आँगनवाड़ी शिक्षक मार्गदर्शिका'' का प्रकाशन विद्या भारती शिशु वाटिका विभाग पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र द्वारा 'सरस्वती प्रकाशन' लखनऊ से हुआ है। महिला बाल विकास विभाग उत्तर प्रदेश सरकार ने इस पुस्तक को अपने विभाग के माध्यम से आँगनवाड़ी हेतु उपलब्ध कराया। कार्यक्रम का सफल आयोजन श्री विजय उपाध्याय, क्षेत्रीय शिशु वाटिका प्रमुख के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। काशी प्रांत के आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की प्रशिक्षण कार्यशाला के आयोजन में विद्या भारती काशी प्रांत के संगठन डॉ० राममनोहर के प्रयास सराहनीय है। विद्या भारती व सहभागी सरकारी अधिकारियों के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में सुन्दर समन्वय होने से कार्यक्रम प्रभावी रहा।

विद्या भारती शोध अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र 'अक्षरा', मध्यक्षेत्र का लोकार्पण सम्पन्न

भोपाल, दिनांक 14 जुलाई 2021 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर कार्यवाह मा.श्री दत्तात्रेय होसबोले जी (मुख्य अतिथि) श्री डी.रामकृष्ण राव, विद्या भारती के अखिल भारती अध्यक्ष (विशिष्ट अतिथि) व श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री मध्यप्रदेश की अध्यक्षता में ''अक्षरा'' भवन का लोकार्पण सम्पन्न हुआ। इस समारोह में विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान के अनेक वरिष्ठ अधिकारी श्री जे.एम.काशीपति, अखिल भारतीय संगठन मंत्री, श्री यतीन्द्र कुमार शर्मा, अखिल भारतीय सह संगठन मंत्री, श्री गोबिन्दचन्द्र महंत अखिल भारतीय सह संगठन मंत्री तथा श्री श्रीराम आरावकर अखिल भारती महामंत्री की उपस्थिति उल्लेखनीय है। विद्या भारती मध्यक्षेत्र के संगठन मंत्री श्री भालचन्द्र रावले, क्षेत्रीय मंत्री श्री विवेक शेण्डेय तथा क्षेत्र के चारों प्रांतों के अनेक पदाधिकारियों की सहभागिता रही।

श्री अनुराग त्रिपाठी, सचिव, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली को स्मृति चिह्न भेंट करते हुए कार्यशाला के प्रतिभागी

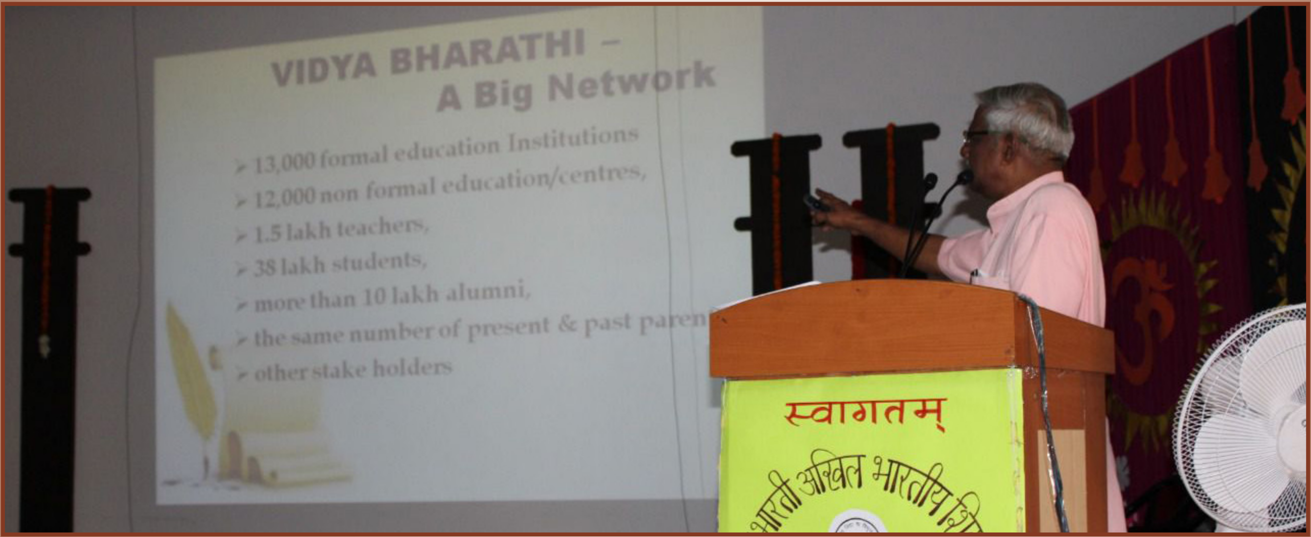

VIDYA BHARATHI –
A Big Network

- 13,000 formal education Institutions
- 12,000 non formal education/centres,
- 1.5 lakh teachers,
- 38 lakh students,
- more than 10 lakh alumni,
- the same number of present & past paren
- other stake holders

अ. भा. शिक्षक प्रशिक्षक कार्यशाला के समापन पर विद्या भारती प्रशिक्षण पद्धति की प्रस्तुति देते हुए श्री डी. रामकृष्ण राव जी, अध्यक्ष विद्या भारती

विद्या भारती अ.भा.शिक्षा संस्थान की अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक कार्यशाला, नई दिल्ली में भाग लेने वाली विभिन्न प्रांतों से आईं प्रतिभागी बहनें

ISSN 2395 - 6267 d|y i|dkf'kr i"B 68 RNI NO. 37111/1981

fo|k Hkkjrh vf[ky Hkkjrh; f'k{kk laLFkku

आजादी का अमृत महोत्सव

दीर्घकालीन परतंत्रता के पश्चात् स्वातंत्र्यवीरों के प्रयत्नों से 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। इस स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध बहिष्कार, असहयोग व सत्याग्रह जैसे आन्दोलन, सशस्त्र क्रांतिकारियों के बलिदान, आजाद हिन्द फौज द्वारा किये गए सैनिक युद्ध, सैनिकों द्वारा अवज्ञा आन्दोलन आदि सभी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत ने प्रगति पथ पर बढ़ना आरम्भ किया है तथा नित नये-नये लक्ष्यों को प्राप्त कर हमारा देश आगे बढ़ रहा है। 15 अगस्त 2021 से भारतीय स्वाधीनता का 75 वाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। वर्ष भर स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव को पूरे देश में मनाने व कार्यक्रम आयोजित किये जाने की योजना है।

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान के मार्गदर्शन में कार्यरत सभी विद्यालयों में भारतीय स्वतंत्रता के इस अमृत महोत्सव को सम्पूर्ण उत्साह के साथ आयोजित किया जाएगा। इनमें :-

1. केन्द्र द्वारा निर्धारित देशभक्ति का एक गीत सामूहिक रूप से गाया जाएगा।
2. स्थानीय स्तर पर राष्ट्रभक्ति के भाव से भरे मासिक गीतों का प्रतिदिन गायन किया जाएगा।
3. प्रधानाचार्य, आचार्य व छात्रों द्वारा स्वाधीनता के संग्राम में बाल-बलिदानियों द्वारा योगदान की गाथाओं का कथा-वाचन किया जाएगा।
4. आचार्यों द्वारा 1947 से 2020 की कालावधि में विज्ञान, क्रीड़ा, शिक्षा तथा सुरक्षा क्षेत्र में भारत की उपलब्धियाँ, समाजजीवन के असाधारण व्यक्तित्व, जिन्होंने पद्म पुरस्कार प्राप्त किये हैं, उनकी विशेषताएँ व परमवीर चक्र पदक प्राप्त वीरों की जानकारी आदि का संग्रह कर आकर्षक प्रस्तुतियाँ तैयार की जाएंगी।
5. स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्रियों के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी संकलित की जाएगी।
6. एक परियोजना (Project) के रूप में विद्यार्थी अपने जिले की कृषि, सड़क, बिजली, पानी, सिंचाई, स्वास्थ्य, उद्योग व व्यवसाय आदि के क्षेत्र में अपने जिले की विकास यात्रा के तथ्यात्मक जानकारियों का संकलन करेंगे।

i|dk'kd ,o end % श्रीराम आरावकर के द्वारा विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान (स्वामी) के लिए जेनिसिस प्रिंटर, सी 74, ओखला इण्डस्ट्रीयल एरिया, फेस–1, नई दिल्ली–110020 (प्रेस) से मुद्रित एवं प्रज्ञा सदन, जी.एल.टी. सरस्वती बाल मंदिर परिसर, नेहरू नगर, नई दिल्ली–110065 (प्रकाशन स्थल) से प्रकाशित।
lEikind–डॉ.ललित बिहारी गोस्वामी